बुलबुल सिरीज़—संख्या २

जन्तु-जगत के जौहर

लेखक—

श्री नारायण प्रसाद अरोड़ा

———

प्रकाशक—

भीष्म एण्ड ब्रादर्स

पटकापुर, कानपुर

द्वितीय बार] जून १९४५ [मूल्य १)

अपनी बात

दो-एक अङ्गरेज़ी पुस्तकों में जानवरों, पक्षियों, और कीड़े-मकोड़ों की कुछ विचित्र बातें पढ़ कर मन में इच्छा हुई, यदि इन बातों को हिन्दी में लिख दिया जाय तो कुछ और लोगों की भी ज्ञान-वृद्धि हो। अतः कुछ लिख मारा। परन्तु पशु-पक्षियों के नामों के सम्बन्ध में बड़ी कठिनाई उपस्थित हुई। यथासाध्य मैंने अंङ्गरेज़ी नामों की व्याख्या करने का प्रयत्न किया है फिर भी मेरे अज्ञान के कारण सम्भव है कुछ ऐसे शब्द रह गये हों जिनका रूपान्तर न लिखा गया हो, उनके लिये क्षमा प्रार्थना है।

इस दूसरे संस्करण में इन तमाम शब्दों को संग्रह करके एक शब्द-कोष के रूप में पुस्तक के अंत में दे दिया है। आशा है पाठक इससे लाभ उठायेंगे।

इस पुस्तक में जीव-जन्तुओं का न तो क्रमबद्ध विकास ही लिखा गया है और न उनका विशेष विवरण ही दिया गया है। इसमें तो उनकी विचित्र और चकित कर देने वाली थोड़ी-सी बातों का संकेत मात्र है। अधिक जिज्ञासा रखने वालों के लिये जीव-जन्तु सम्बन्धी साहित्य अंगरेज़ी में तो भरा पड़ा है और हिन्दी में भी कुछ है ही। जिज्ञासु लोग खोजें और पढ़ें। मैंने तो जानवरों के थोड़े से जौहर संग्रह कर दिये हैं। यदि इनसे किसी का मनोरंजन हुआ अथवा कुछ भी ज्ञान वृद्धि हुई और जीव-जन्तु सम्बन्धी जिज्ञासा बढ़ी तो मैं अपना श्रम सफल समझूँगा।

—लेखक

समर्पण

प्रिय द्रोण !

तुम्हें जानवरों का बहुत शौक़ था। जिस वक़्त जेल में मैं यह पुस्तक लिख रहा था, उस समय सोच रहा था कि जब तुम मेरी यह कापी पढ़ोगे तो बहुत प्रसन्न होगे। किन्तु विधि का विधान कुछ और ही था। अब तुम्हारे नाम के सामने "स्वर्गीय" शब्द लिख कर यह पुस्तक तुम्हें भेंट करनी पड़ रही है। लो बेटा! अपने अभागे बाप की यह स्नेह-भेंट स्वीकार करो। मेरे मन में तो :—

'यही थी एक तमन्ना ज़िन्दगी में आखिरी अपनी।
कि तुम साहिल पै होते और किश्ती डूबती अपनी॥

परन्तु औंधी दुनिया में हुआ इसके प्रतिकूल। और मैं तुम्हें देख भी न सका।

—नारायण

विषय सूची

जन्तु-जगत के जौहर

डिम्ब

समस्त जीवन एक अण्डे से प्रारम्भ होता है। वृक्ष के अण्डे को बीज कहते हैं। मेढक, कुत्ते और मनुष्य के अण्डे को रज-डिम्ब का नाम दिया जाता है, किन्तु हैं सब अण्डे ही, यद्यपि अण्डा शब्द का प्रयोग साधारणतः जीव-जाति की प्रारम्भिक अवस्थाओं में ही किया जाता है। जीवधारियों के अण्डे संख्या, आकार और रूप में बड़ी विभिन्नता रखते हैं। कुछ आदि जीवधारी अपनी नसल को जारी रखने के अन्य प्रकार के एक तरीक़े पर निर्भर करते हैं। जैसे समुद्री-फल, सितारा मछली—जिसके बाहु के सदृश पाँच-सात अंग होते हैं—और कुछ कृमि, अंग-भंग करने से बढ़ते हैं। काटे हुये अंगों के टुकड़े नवीन व्यक्ति बन जाते हैं। प्रत्यक्ष विनाश की क्रिया ही से उनकी जाति फूलती-फलती है। किन्तु किसी जीव का संसार में प्रवेश साधारणतया किसी न किसी प्रकार के डिम्ब ही के द्वारा होता है।

आरम्भ में—

मानव डिम्ब एक इञ्च का सौवाँ हिस्सा होता है। इस प्रकार एक शहर की सारी आबादी मुर्गी के एक अंडे के भीतर समा सकती है। एक मुर्गी के पेट में बीसों अंडे होते हैं जिनका आकार एक सुपारी से लेकर एक तिल के दाने के बराबर तक होता है।

लाखों अंडे—

जीवन की सीढ़ी में जितना नीचे हम उतरते जायेंगे उतना ही हमको मालूम होगा कि अंडे अत्यन्त उदारता से उत्पन्न किए जाते हैं। कोई-कोई अमेरुदण्डी (बिना रीढ़ वाले) जीव लाखों अंडे देते हैं। मेरुदण्डी जीवों में "लिंग" नामक जीव अत्यन्त बहु-प्रसव होता है, वह १६ करोड़ अंडे देता है। 'स्टिकिल बैक' नामक मछली जिसकी पीठ की हड्डी बड़ी तेज़ होती है, केवल कुछ कोड़ी अंडे देती है, जिनका रक्षा नर करता है और उन्हें सेते-सेते अपने को समाप्त कर देता है। अनेक सरीसृप अपने अंडे रेत में अथवा सड़ने वाले पदार्थों में गाड़ देते हैं और सूर्य की गरमी से वे परिपक्व हो जाते हैं।

बुद्धि का युद्ध—

मनुष्य का बच्चा दस सप्ताह की आयु में भी असहाय रहता है, किन्तु हिरन का बच्चा दस घंटे ही में फुदकने लगता है और साँप के जो बच्चे जीवित पैदा होते हैं वे दस मिनट ही में स्वावलम्बन का पूर्ण चित्र उपस्थित कर देते हैं।

थैले वाले जीव—

प्रारम्भिक स्तनपायी जीवों में अपने शरीर में अपने बच्चों का पालन करने का कोई उपाय न था। वे भी उसी प्रकार अपने अंडे रखते थे जैसे कि सरीसृप करते थे। आस्ट्रेलिया के थैले वाले जीव अपने-अपने अंडों को अपने शरीर के भीतर से स्थानान्तरित करके अपने थैले में रख लेते हैं। यहीं से बच्चे अपनी माता के स्तनों के अग्र-भाग से दूध पीते हैं। कांगारू अपने बच्चे को नौ महीने तक इसी थैले में रखे हुये फिरा करती है। इसके पश्चात् एक साल तक बच्चा किसी घटना विशेष पर उक्त थैले अपनी सुरक्षा का सुगम स्थान समझता है।

जीव-निर्माण—

जीव-निर्माण का समय माता-पिता के आकार पर निर्भर रहता है। मुर्गी का अंडा २१ दिन में तैयार हो जाता है किन्तु हँस के अंडे को इससे दूना समय लगता है। मनुष्य को विकसित होने के लिए गर्भाधान और जन्म होने के बीच में नौ मास लगते हैं। किन्तु आकार की बड़ाई-छुटाई का यह नियम हाथी और जिराफ़ पर लागू नहीं होता। क्योंकि यद्यपि वे मनुष्य से आकार में कई गुना बड़े होते हैं, फिर भी उनके बच्चों को गर्भ-काल में मानव बच्चे से केवल दुगुना ही समय लगता है। अतः उच्चकोटि के जीवों को बनने के लिये अधिक समय की आवश्यकता होती है।

भोजन

किसी जीव की प्रकृति कैसी भी हो उसे भोजन प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पौधों के द्वारा प्राप्त होता है। बाघ और शेर ऐसे मांसाहारी पशु भी कार्बन (अंगारक वायु), आक्सीजन (प्राण-वायु) और हाइड्रोजन (उद्‌जन) के सदृश पोषक पदार्थ अप्रत्यक्ष रूप से अपने शाकाहारी शिकार से प्राप्त करते हैं।

खाने के अनेक ढङ्ग—

जिस प्रकार प्रारम्भ में जीवन एक सीधी-सी बात थी उसी तरह भोजन करना भी बिल्कुल सरल काम था। "एमीबा" सरीखा एक-कोषीय जीव जो जल और थल दोनों में पाया जाता है अक्षरशः अपने भोजन के चारों ओर लिपट जाता है। अत्यन्त भद्दी शक्ल ग्रहण करके वह किसी भोज्यकण के इर्द-गिर्द इस

समय तक बहता रहता है जब तक कि विजातीय शरीर स्वयं उसके शरीर का एक आवश्यक अंग नहीं बन जाता। कुछ प्रारम्भिक जीव अपने हिलने वाले दाँतों के द्वारा अपने भोजन को अपने में सात्म कर लेते हैं। भोजन करने का यह ढङ्ग जन्तु-जगत का कुछ उच्च श्रेणियों में भी साधारणतया अख्तियार कर लिया जाता है।

१४१७५ दाँत वाला घोंघा—

जन्तु जीवन की दौड़ में दाँत को क्रम-वृद्धि बाद की चीज है। अमेरुदण्डी जीवों में दाँतों का काम अनेक अन्य प्रकार के उपायों से लिया जाता था और अब भी लिया जाता है। गुबरीला, चींटी या केकड़े के दाँत और जबड़े वास्तव में उनकी टाँगें हैं जो आकार के अनुसार रूपान्तरित हो गई हैं। केकड़ों और झींगा मछली ने इसकी पूर्ति अपने उदर को भीतरी दीवालों को कठोर बना कर, कर ली है, जो चक्की के पाटों की तरह एक दूसरे के ऊपर रगड़ा करती हैं। कुछ समुद्री घोंघों में जो अन्य प्रकार के घोंघों और सीपों आदि को निगल जाते हैं, इस प्रकार के अङ्ग बन गये हैं। कुछ घोंघे एक प्रकार की आरी से अपने भोजन को कुतर लेते हैं। बगीचों में रहने वाले घोंघों के इस प्रकार के १४१७५ दाँत १३५ कतारों में होते हैं। अष्ट-पद और स्कुइड नामक उस मछली में जो चारे के बजाय इस्तेमाल की जाती है, दाँतों ने घने होकर दो भागों की एक नोकीली चोंच का रूप धारण कर लिया है, जो तोते की चोंच से बहुत कुछ मिलती-जुलती है।

कभी चिड़ियों के दाँत थे—

दाँतों के पहले जबड़े बने, फिर शार्क मछली के-से दाँत हुए, इसके पश्चात् वास्तविक दाँत। सरीसृपों के दाँत एक

सीधी रेखा में जबड़े की हड्डी की सारी लम्बाई में होते हैं। इसी तरह के दाँत किसी समय आदिम चिड़ियों में होते थे।

मनों वज़न के दाँत—

स्तनपायियों में दाँत उस जीव की मुख्य चीज़ बन गये हैं। सरीसृप के सारे दाँत एक ही तरह के होते हैं; किन्तु प्रत्येक स्तन-पायी के दाँत तीन प्रकार के होते हैं—खुथरने वाले, फाड़ने वाले और पीसने वाले। प्रत्येक प्रकार में भी विचित्र विभिन्नता पाई जाती है। खुथरने वाले दाँत, उदाहरणार्थ हाथी के नुकीले बाहरी दाँत बन जाते हैं, जो कभी-कभी १० फुट लम्बे तक हो जाते हैं और जिनमें प्रत्येक का वज़न आधे टन तक होता है। ऊतबिलाव में ये ही खुथरने वाले दाँत जबरदस्त लकड़ी काटने वाले बन जाते हैं और एक कांगारू में ये एक कैंची का काम देते हैं, किन्तु हमारे लिये यह दाँत एक कमजोर खुथरने वाले औजार स्वरूप हैं जो केवल मुलायम पदार्थों ही में उपयोग किये जा सकते हैं।

चींटी-भक्षियों ने अपने दाँत बिलकुल गिरा दिये हैं किन्तु बचपन में उनके कुछ दाँत होते हैं। समस्त दाँतों के रूपान्तरों में साँप के ज़हरी दाँत बड़े ही विचित्र होते हैं। वे बदल कर त्वचा की भीतरी तह में डालने वाली पिचकारी बन जाते हैं जो विभिन्न शक्ति का विष शरीर में प्रवेश कर देती है और यह सारा विष मुँह की लार ही से उत्पन्न कर लिया जाता है। आमतौर से हम दाँतों का काम चबाना ही समझते हैं, किन्तु बहुत प्रारम्भिक दाँत चबाने के अयोग्य होते हैं, उनका प्रथम कार्य होता है जीवित भोजन को पकड़ना और उसे बचकर भाग जाने से रोकना। ऐसे दाँत मछलियों और सरीसृपों में होते हैं। कुछ मछलियों के पीसने वाले दाँत होते हैं और वे इतने दृढ़ होते हैं कि कठोर घोंघा या सिप्पी को पीस डालते हैं, किन्तु मुख्यतः

शिकार साबित ही निगल लिये जाते हैं। मछलियाँ चलते-फिरते जीवित जाल होती हैं, और कीड़े, कौड़ी और बड़े-बड़े पत्थर आदि जो उन्हें मिलते जाते हैं उन्हें खाती जाती हैं।

मछलियों और सरीसृपों के दाँत गले की ओर मुड़े होते हैं। यही कारण है जो हमें साँप को निगल जाने वाली लीलाओं से चकित करता है। देखा गया है कि एक साँप दूसरे उस साँप को साफ निगल जाता है जो एक चूहे को निगलने का प्रयत्न करता होता है। साँप के मुँह में जो कुछ भी जाता है उसे वह उगल नहीं सकता।

गहरे समुद्र में रहने वाली एक मछली जिसे "काली निगलू" कहते हैं, इतना खाने वाली होती है कि वह अपने शरीर से ५ या ६ गुना भोजन निगल जाती है। अपने अधिक भुक्खड़पन के कारण उसे अपने शिकार का पीछा करने में अक्सर पानी के ऊपर आना पड़ता है, जहाँ एक समुद्री चिड़िया शिकार और शिकारी दोनों को समाप्त कर देती है।

चिपका लेने वाली जीभ—

उच्च रचना के कुछ जीव दाँतों से मुक्त होते हैं। सारे पक्षी दन्तहीन होते हैं। वे अपने भोजन के साथ जो गर्द और बालू निगल जाते हैं वह उनके लिये वही काम करता है जो १० पैर वाली मछली के लिये तीन दाँत वाली पेट की चक्की करती है। चींटी-भक्षी और कठफोड़वा के समान कुछ थोड़े से जन्तु ऐसे होते हैं जिन्हें भोजन संग्रह करने का सहारा केवल अपनी जीभ पर होता है। ऐसी लम्बी और शक्तिशाली जीभों की जड़ें बहुत असाधारण होती हैं।

बहुत सी जीभें तो जीभ वाले के तालू के पीछे जुड़ी रहती हैं, चींटी-खोरे की जीभ का लंगर उसकी छाती की हड्डी में

लगा रहता है, और कठफोड़रे की जीभ उसके कानों के पीछे से होकर सिर को पार करके उसकी आँखों से जुड़ी रहती है। रीढ़ वालों की जीभों में कदाचित् सबसे विचित्र जीभ गिरगिटान की होती है। उससे कीड़ों को चिपका लेने का काम लिया जाता है। गिरगिटान अपनी जीभ को अपने सारे शरीर की लम्बाई से भी अधिक दूर तक निकाल कर कीड़े-मकोड़ों को उसमें चिपका कर ले आता है।

सिकुड़ने वाले एक अजगर ने ४ वर्ष तक कुछ नहीं खाया—

खाने का उल्टा भूखे रहना है, और यद्यपि कोई जीव अनिश्चित काल तक भूखा रह कर बच नहीं सकता, तो भी सहन-शक्तियों में बड़ा अन्तर होता है। पेरिस के चिड़ियाघर में एक सिकुड़ने वाले अजगर ने सबको मात कर दिया जो पूरे चार वर्ष तक बिना कुछ खाये ही जीवित रहा।

साधारणतया पशु स्वयं अपनी चर्बी पर निर्वाह करके अकाल के समय को पार कर देते हैं। ऊँट इस बात का एक अच्छा उदाहरण है। मिश्र की मरुभूमि के चूहे और एरीजोना की ज़हरीली छिपकली या बिसतुइया के समान कुछ अन्य जानवर ऐसे होते हैं जो अपनी पूँछ में चर्बी का एक बड़ा संचित कोष लिए फिरते हैं। ऊँट की तरह ये भी दीर्घकालीन भूख में बिलकुल चुस्त-चालाक बने रहते हैं। साधारण ढङ्ग यह होता है कि सुकाल के समय जो चर्बी एकत्रित की जाती है वह घोर निद्रा में लिप्त होकर धीरे-धीरे खर्च की जाती है। इसका सुन्दर उदाहरण जंगली चूहा है जो पतझड़ में एकान्तवास ग्रहण कर लेता है और अगली वसन्त ऋतु में दुबला किन्तु अनुकूल अवस्था में बिल्कुल ठीक-ठाक निकल आता है।

साधारण मेढक के विषय में अनेक कहानियाँ हैं किन्तु वह एक साल से अधिक बिल्कुल भूखा नहीं रह सकता। उसकी सहनशक्ति मरुभूमि के घोंघे से बहुत कम होती है जो ढाई वर्ष तक चिपका रह कर बृटिश अजायबघर में जीवित देखा गया है। इस समय के बाद "मुर्दा घोंघा" जागा और जब उसे गर्म स्नान कराया गया और भोजन भेंट किया गया तब उसने बड़ी दिलचस्पी प्रकट की।

गति के अनेक रूप

मेरुदण्डी जीवों के आगमन के पूर्व गति के अनेक रूप प्रकट हो चुके थे। कस्तूरा मछली और जेली अर्थात् मुलायम शरीर वाली झींगा मछली की चाल को उतराना कहना चाहिये क्योंकि उनकी गति का कोई उद्देश्य नहीं होता। कुछ कृमि गति को और आगे बढ़ाते हैं और अपनी वक्र तरंगों से सर्पों और मछलियों का अनुकरण करते हैं। बाद में उत्पन्न होने वाले घोंघे या सिप्पी और पतली झिल्ली वाले जीव उड़ना छोड़ कर यात्रा के सब ढङ्गों का प्रयोग करते हैं।

पहले समुदाय के जीव जिसमें सितारा मछली और समुद्री साही होते हैं—ट्यूबदार पैरों और पोली टाँगों की एक विचित्र पद्धति का प्रयोग करते हैं। इन ट्यूबदार पैरों की सहायता से सितारा मछली अपने को उलट जाने पर सीधा कर लेती है, कस्तूरा मछली के कवच को खोल डालती है और किसी भी ओर सरलता से यात्रा कर लेती है। समुद्री साही अपनी गोलाकार खाल के समस्त भागों से ट्यूबदार पैर बाहर निकाल लेती है, और प्रत्येक अवस्था में सीधी ही रहती है।

पीछे चलने वाले जन्तु—

घोंघा अपने एक बड़े पैर पर फसलता हुआ चलता है। रेत को काफी गहराई तक खोदने में घोंघे इसी तरह के अंगों का प्रयोग करते हैं और लकड़ी तथा मुलायम पत्थरों में सुरंग बनाते हैं। कुछ मोती की तरह के जानवर या सीपी जैसे समुद्री-खरहा पानी में उसी तरह फड़फड़ा कर चलते हैं जैसे पक्षी हवा में करते हैं। अष्टपद ने, जो सारे घोंघों में सबसे बड़ा होता है, अपने पैरों को आठ चूसने वाले हाथों में विभक्त कर लिया है। इन्हीं आठ हाथों की सहायता से वह मकड़ी के समान चलता है। जब दबता है तब वह अपने हाथों को सिकोड़ लेता है और अपनी टेढ़ी नली से पानी निकाल देता है, और तेजी से पीछे की ओर झपटता है।

सरीसृपों ने उभचरों को पीछे क्यों छोड़ दिया—

स्थल पर रहने वालों की उन्नति के लिये फेफड़ों का होना आवश्यक था। सरीसृपों में फेफड़े होने के कारण उन्होंने टेढ़ी-मेढ़ी आकृत्ति के उभचरों को अपने से बहुत पीछे छोड़ दिया। एक कछुआ धरती से अपने शरीर को उठा सकता है किन्तु उसके अंग वैसे हो जाते हैं जैसे कि कमर पर हाथ रखने से कोहनियाँ बाहर की ओर हो जाती हैं। इनसे उसकी चाल धीमी पड़ जाती है। स्तनपायी अपने घुटनों और कोहनियों को अपने शरीर के साथ एक रेखा में ले आते हैं, इससे उनका वज़न बँट जाता है और उन्हें चलने में विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ता है। गतिमान मछली के प्रथम प्रयत्न से सीधे होकर चलने वाले मेरुदण्डी जीव की चाल तक पहुँचने में १,०००,०००,००० वर्ष लग गये।

पूँछ वज़न को स्थिर करने वाले डण्डे का काम करती है—

मनुष्य के सिवा और कोई जीव ऐसा नहीं कर सकता। मनुष्य के सदृश्य वनमानुष केवल कूबड़ निकली हुई डगमगी चाल का प्रयत्न करता है। कुछ जानवर अपने हाथों को वज़न स्थिर करने वाले डण्डों के तौर पर प्रयोग करते हैं, किन्तु सब ही को चारों हाथ पैरों से चलने में सुख मिलता है। मनुष्य की नकल करने वाले समस्त दूसरे जानवरों को अपनी पूँछ को पसंघे की तरह इस्तेमाल करना पड़ता है। बिना इस प्रकार की सहायता के कांगारू और आस्ट्रेलिया की झालरदार छिपकली लुढ़क कर आगे नाक के बल गिर पड़ेंगे। उनकी सहायता के लिये उनकी पूँछों के होते हुए भी सीधे रहने के लिये उन्हें जल्दी-जल्दी चलते ही रहना पड़ेगा। हलका शरीर होने के कारण चिड़ियों को कम रुकावट का सामना करना पड़ता है। और उनके पंजों के पर्याप्त फैले होने के कारण उन्हें दृढ़ता से जमने का स्थान मिल जाता है।

समस्त चौपाए चक्रगतिकारी या कोण में चलने वाले होते हैं। हम सोधे होकर चलते हैं किन्तु हमारे हाथ अपने आप गति करने लगते हैं जो उस समय की एक गूँज (प्रतिध्वनि) है जब कि हम कम सीधे होकर चलते थे। हम अपनी चाल में अपने अंगों को आमने-सामने के कोनों से झुलाते हैं। किन्तु एक कुत्ता एक समय में अपने एक ही अंग को इस्तेमाल करता है। और बारी-बारी से सबको चलाता है।

लौट कर पुनः समुद्र में जाने वाले जीव—

जीव-प्रगति का एक लक्षण यह है कि उनकी गति समुद्र की ओर लौटने की है। जीवन पानी में प्रारम्भ हुआ था किन्तु अन्त में अनेक जीव पानी छोड़ कर पृथ्वी पर आ गये। थोड़े

से लौट भी गये। इसके उदाहरण समुद्री-शेर और ह्वेल हैं। दोनों माँसाहारी स्तनपायी हैं। समुद्री-शेर माँसाहारी भेड़िये और भालू से बहुत कुछ मिलता-जुलता बना हुआ होता है। प्राचीन अस्थि-पंजरों के देखने से पता चलता है कि ह्वेल भी एक बृहत् माँसाहारी जीव की सन्तान है, जो अपने पूर्वजों से बिलकुल नहीं मिलती। या तो भोजन की खोज में, या किनारे के बड़े शत्रुओं से बचने के अभिप्राय से ह्वेल के पूर्वज पानी में इसलिये लौट गये कि उन्हें वहाँ वह स्वतंत्रता प्राप्त हो जो उन्हें धरती पर नहीं मिलती थी। उनका उद्देश्य चाहे जो कुछ रहा हो, वे इस बात का एक दुखद उदाहरण हैं कि वे एक आफ़त से निकल कर दूसरी आफ़त में फँस गई। मनुष्य अपने अस्त्र-शस्त्रों और गोली बारूद से किसी समय की इस बलवान जाति का नामोनिशान मिटाये दे रहा है। केवल उनका थोड़ा-सा अयोग्य अवशेष अंश बच रहा है।

जानवरों की चाल—

मोटरकार और वायुयान आदि अनेक मशीनों ने जानवरों की चाल में बाधा उपस्थित कर दी है। केवल थोड़े से ऐसे कीड़े-मकोड़े हैं जिनके सम्बन्ध में यह विश्वास किया जाता है कि उनकी चाल हवाई-जहाज के बराबर है, किन्तु बाज और गरुड़ की तरह विभिन्न पक्षी हैं जो १७० और १८० मील प्रति घन्टा के हिसाब से उड़ सकते हैं।

धरती पर कोई ऐसा जानवर नहीं है जो चीते या शिकारी तेंदुए की चाल की बराबरी कर सके। उनकी चाल ६० मील प्रति घन्टा होती है। धरती पर की सारी तेज़ चाल केवल थोड़े ही फ़ासलों तक जारी रह सकती । कोई आदमी तेज़ी से ३० मील प्रति घण्टा से अधिक नहीं दौड़ सका है और न ७० मील

प्रति घन्टा के हिसाब से अधिक बाइसिकिल चला सका है। पानी में चाल और भी धीमी हो जाती है। अब तक जो अधिक से अधिक तेज़ चाल जाँची गई है वह 'टनी' नाम की मछली की ४० मील प्रति घन्टा के हिसाब से देखी गई है।

मछलियों का स्थानान्तर गमन--

आर्थिक दृष्टि से जानवरों की यात्रा का महत्व उस आर्थिक या छमाही गमनागमन से है जिसे स्थानान्तरित होना कहते हैं। इन्हीं गमनागमनों पर मछलियों और अन्य मदयों की फसल प्राप्त होती है। इन गमनागमनों के प्रति कुछ मिथ्या विश्वास भी प्रचलित हैं। कुछ लोग चिड़ियों क उड़ान और मछलियों तथा कीड़े-मकोड़ों की यात्रा से शुभाशुभ की बातों को जोड़ देते हैं। कुछ मछलियों का आगमन समुद्र की लहरों से सम्बन्धित होता है या किन्हीं भौतिक परिवर्तनों से, जैसे ऋतु-परिवर्तन आदि।

क्या चिड़ियाँ किसी निश्चित मार्ग से जाती हैं ?--

चिड़ियों का उड़ान बहुत करके ऋतुज हवाओं की दया पर निर्भर करता है और उसका सम्बन्ध किसी निश्चित मार्ग से क़तई नहीं होता। कुछ विशेषज्ञों का मत है कि चिड़ियों के निवास-स्थान पर अधिक ठंढक होने से उन्हें अपने नाश होने का भय होने लगता है अतः वे उस स्थान को छोड़ कर गर्म स्थानों को चली जाती हैं और जब ठंढ कम हो जाती है तब अपने मूल-स्थान को लौट आती हैं।

बच्चे देने के लिये समुद्र पार किये जाते हैं--

घरेलू मकड़ी के समान कुछ जीव गजों की दूरी में स्थानान्तरित होते हैं; किन्तु ह्वार्बालें महाद्वीपों को पार करती हैं।

दूरी चाहे जितनी हो, स्थानान्तर गमन का मुख्य कारण भोजन और वैवाहिक आराधना की प्रेरणा ही होती है। भोजन ही जल-व्यालों को लाखों की संख्या में ३००० हज़ार मील एटलां-टिक महासागर के पार सारगोसा समुद्र से योरप में ... भोजन की कमी ही कैनाडा के जंगली बारहसिंघों को लगातार देश के एक सिरे से दूसरे सिरे तक जाने के लिये बाध्य करती है। अमरीका के धीरे-धीरे चलने वाले 'स्लथ' नामक चौपाए को १०० फुट ऊँचे पेड़ों की चोटियों पर चढ़ने की प्रेरणा केवल "भावनाओं" ही से मिलती है।

जीव-जन्तु और समाज

अनेक प्रकार की छोटी-छोटी छिलकेदार सब्ज़ियाँ अ... घोंघे संख्या में इतने अधिक होते हैं कि वे मीलों तक खुले समुद्र का रंग बदल देते हैं। टिड्डियों के दल सूरज के प्रकाश को छिपा लेते हैं और पृथ्वी के बड़े-बड़े मैदानों को ऐसे ढक लेते हैं मानों किसी ने एक बड़ा कम्बल तान दिया हो। कई स्थानों पर मछ-लियाँ इतनी संख्या में पाई गई हैं कि जहाजों का रास्ता रुक गया है। भिनगे या तितली के पहले रूप इतने इकट्ठे हो गये हैं कि उन्होंने रेलगाड़ियाँ रोक दी हैं और सड़कों की आमदरफ़्त बन्द कर दी है। लेकिन एक तरह के जानवरों के इन बड़े-बड़े जमघटों में से किसी को भी समाज नहीं कह सकते। समाज का अर्थ केवल एक से अधिक जीवों का एक स्थान पर जमा हो जाना ही नहीं है बल्कि संख्या के अतिरिक्त और भी कुछ है। एक तरह का समाज शहद की मक्खियों, बर्रों और चींटियों के समान कीड़े-मकोड़ों द्वारा उपस्थित किया जाता है किन्तु ध्यान से देखने पर यह विदित होता है कि इनकी सह-

योगी संस्थाएँ भी मानव-समाज से तनिक भी नहीं मिलतीं, कम से कम उनमें जनसत्तात्मक नींव तो कोई होती ही नहीं। मानव-समाज और कीड़े-मकोड़ों की संस्थाओं में जो समानता दिखलाई जाती है वह एक ओर का अपूर्ण ज्ञान और दूसरी ओर के प्रति पूरा अज्ञान प्रकट करती है। यदि कोई चींटी जख्मी हो जाती है तो उसे उसके भाग्य पर छोड़ दिया जाता है और उसका कोई भी साथी उसकी तनिक भी परवा नहीं करता और न कुछ सहायता ही पहुँचाता है। आश्चर्य की बात है कि यदि चींटियों के सामने मिठाई रख दी जाय तो वे अपने प्रेम-पालित बच्चों को खतरे में डाल कर मिठाई खाने लगती हैं। वे मिठाई के सामने अपने बच्चों को लुटेरों की भेंट कर देती हैं और उनकी तनिक भी परवा नहीं करतीं। यही हाल शहद की मक्खी के एक श्रमिक का होता है। उसे कीट कोष से निकलते ही, बिना शिक्षा के, स्वयं अपना काम आ जाता है। कोई चींटी अपने काम के अतिरिक्त और कुछ नहीं कर सकती। यदि जख्मी होकर वह बेकार भी हो जायेगी तो भी वह अपने उस काम को उसी तरह करती रहेगी जैसे कि एक चाभी भरा हुआ खिलौना। यद्यपि कीड़े-मकोड़ों के समाज और हमारी समाज में कुछ ऊपरी समानता अवश्य दिखलाई देती है, किन्तु वह युगों से वैसी ही चली आई है और सम्भवतः आगे भी अन्त तक ऐसी ही चली जायगी। उसमें न किसी सुधार की और न किसी प्रकार की उन्नति की आशा है।

समाज किसी भीड़ या परिश्रम करने वाले समूह का नाम नहीं है। किन्तु वह तो है मस्तिष्कों का एकीकरण और शक्ति के साथ आपस का मेल-जोल और सहानुभूति। मछलियों और पानी के परिसुओं की बड़ी से बड़ी संख्या में कोई वास्तविक शक्ति नहीं होती। ऐसे जीवों की संख्या किसी एक विशेष स्थान

पर केवल बहुतायत से पैदा होने के कारण बढ़ जाती है। बहुधा इनकी बहुतायत ही इन सब को बाहरी शत्रुओं का लक्ष्य और भीतरी बीमारी का शिकार बनाती है।

जानवरों में नेता होते हैं--

समाज का प्रारम्भ कुटुम्ब से पैदा होता है। कई कुटुम्बों का एक संघ में एक साथ सूत्र-बद्ध कर देना वास्तविक समाज का श्रीगणेश है। उनमें आपस में सबकी भलाई के लिये सहिष्णुता और एकता होना आवश्यक है, इस कार्य के लिये बुद्धि की आवश्यकता होती है, अतः केवल उच्चकोटि के जीवधारियों में ही समाज के दर्शन हो सकते हैं। पक्षियों में समाज के लक्षण दिखाई देते हैं, किन्तु उसका पूर्ण विकसित स्वरूप उच्चकोटि के स्तनपायियों में प्रकट होता है। अपने झुन्ड के बाहरी भाग पर रहने वाली बतख जब किसी लोमड़ी को गल्ले के पास आते देखती है तो अपने साथियों को खतरे की सूचना देती है। परन्तु कोई सामाजिक कीड़ा-मकोड़ा नहीं ऐसा करता। चिड़ियों में मा-बाप की-सी फिक्र होती है, वे सुन्दर घर बनाती हैं और वे बहुधा 'प्रेमपूर्वक वैवाहिक सम्बन्ध में बँध कर रहना भी जानती हैं, किन्तु वे उस तरह के मेल-जोल के लाभों को नहीं अनुभव करतीं जैसा कि भेड़ों, भेड़ियों और बन्दरों में देखा जाता है।

प्रायः सब प्रकार के चौपाये एक झुँड बनाकर रहते हैं और यदि उन पर आक्रमण होता है तो वे एक विधिपूर्वक ढंग से आक्रमणकारी का सामना करते हैं। वे एक चौकोर व्यूह बनाते हैं, जो बीच में पोला होता है और बाहर की ओर नर खड़े होते हैं और अपने शत्रुओं के लिये अपने सींग तैयार रखते हैं। चिड़ियों के बिल्कुल विपरीत, स्तनपायी अपने नेता या सरदार की आज्ञा पालन करते हैं और उसकी क़द्र करते हैं।

कुछ पशुओं में तो मालूम देता है कि जनता की सभा के-से साधारण नियम भी होते हैं। भेड़ियों के झुण्ड का एक मुखिया होता है जिसकी आज्ञा सबको माननी पड़ती है और यदि कोई आज्ञा नहीं मानता तो उसके साथी उसे सरदार की आज्ञा मानने के लिये बलपूर्वक बाध्य करते हैं। हाथियों का भी एक सरदार होता है जो सदा झुण्ड के आगे-आगे चलता है। हाथियों में सबसे बलवान ही सरदार हो सकता है। इनमें कभी-कभी सरदारी के लिए दो बलवान हाथियों में युद्ध भी होता है और जीतने वाले को सारा झुण्ड अपना सरदार मानने लगता है।

इससे भी बढ़कर मनुष्यों की-सी समाज बन्दरों और बनमानुषों में देखी जाती जाती है। कई कुटुम्ब मिल कर एक बड़ा झुण्ड बना लेते हैं और उन सब पर शासन करने वाला एक सरदार होता है। उनके अलिखित क़ानून बड़े कठोर होते हैं। उन्हीं नियमों के अनुसार स्त्रियों का बँटवारा होता है, बच्चों को ठीक मार्ग पर लाया जाता है और जिद करने पर उन्हें सज़ा दी जाती है।

बन्दर अपने बच्चों की रक्षा में बड़े सतर्क रहते हैं। वे पहले ख़ुद अन्न चबा-चबा कर बच्चों को देते हैं। उनकी बाल-रक्षा की सतर्कता के दो उदाहरण यहाँ पर निजी अनुभव के आधार पर लिखता हूँ :—

(१) एक बार एक बन्दर का छोटा बच्चा कानपुर की ठण्ढी सड़क पर एक साइकिल से कुचल गया और ऐसे जोर से चिल्लाया कि आस-पास के सारे बन्दर जमा हो गये। बाइसिकिल वाला तो साइकिल भगाकर चला गया किन्तु थोड़ी देर तक उन सारे बन्दरों ने रास्ते वालों का निकलना मुश्किल कर दिया। किसी की क्या मजाल थी कि सड़क के एक ओर से

दूसरी ओर को चला जाता। वे एक कुचलने वाले मनुष्य के बदले सब आदमियों को अपना शत्रु समझने लगे थे और उन पर खाँव-खाँव करके झपट पड़ते थे। तनिक ही देर में काफ़ी भीड़ जमा हो गई और शायद भीड़ की अधिकता ही देखकर थोड़ी देर बाद बन्दर चल दिये।

(२) एक दिन बन्दर का एक बच्चा मेरे मकान (पटकापुर) में एक कमरे में घुस गया और दूसरी ओर से सीखचों के द्वारा निकलने का प्रयत्न करने लगा। जब नहीं निकल सका तो उसने एक विशेष प्रकार की आवाज़ की, जिससे आस-पास के बन्दर आने लगे। मैं यह देख वहाँ पहुँचा और उसको कमरे से भगाने को कोशिश करने लगा। इतने ही में उसने ऐसे ज़ोर की चीख मारी कि सारे बन्दर वहाँ जमा हो गये। इतना अच्छा हुआ कि वह बच्चा कमरे से बाहर हो गया था और मैं भीतर रह गया था। तो भी वे बन्दर किवाड़ों को भड़भड़ाते थे और ढकेल कर भीतर घुस आना चाहते थे और मुझसे अपने बच्चे का बदला लेना चाहते थे। इतने ही में मेरा बहरा नौकर मोहन कहार बाहर से आ गया और ऊपर आ रहा था कि मैंने उसे आवाज़ देकर कहा कि "लाठी लेकर ऊपर आना। यहाँ बहुत से बन्दर जमा हैं।" किन्तु वह बहरा था वह मेरे सबसे छोटे पुत्र शिवाजी को कंधे पर बैठाये हुये ऊपर दनदनाता हुआ चला आया। इतने में दो-चार बन्दर उसके पैरों में चिपट गये। मैं भी निकल आया और बड़ी मुश्किल से उन्हें भगाने में सफल हुआ।

जवान बन्दरों को अनुशासन में रखा जाता है। यदि भय के स्थान से कोई बुड्ढा सदस्य हट जाता है तो दूसरा बलवान साहस के साथ उसका स्थान ग्रहण करता है। उनमें से कुछ तो

कभी-कभी बढ़िया चालाकी और सुन्दर दाँव-पेचों से काम लेते हैं और एक दूसरे की सहायता को हरदम तैयार रहते हैं।

बन्दरों की संगठन-शक्ति का नमूना इस प्रकार देखा गया है :—

कानपुर के फूल बाग में बन्दरों के दो दल आते हैं। दोनों की सीमाएँ मुक़र्रर हैं। एक दल दूसरे की सीमा में नहीं जाता। एक बार मैंने देखा कि एक दल ने दूसरे दल को बहुत दूर तक खदेड़ दिया। भागने वाला दल काफ़ी दूर तक अपनी सीमा में पीछे हटता गया और आक्रमणकारी दल घुसता गया। जब पीछे हटने वालों का नेता, जो एक हाथ वाला डुण्डा था और जो अब तक सबके साथ नहीं था, कदाचित् कहीं गया था, आया, तो उसने ललकार कर आक्रमणकारी दल पर ऐसे जोर से अपने सब साथियों को प्रोत्साहित करके धावा किया कि उन्हें भागते ही बना, और जब तक वे उसके दल की सीमा के बाहर नहीं निकल गये डुण्डा अपने साथियों के साथ उन्हें खदेड़ता ही गया। बन्दरों के दलों में अक्सर लड़ाइयाँ भी होती हैं और लोग जमा होकर इन लड़ाइयों को देखा करते हैं।

ये बातें चींटी आदि अन्य कीड़े-मकोड़ों में नहीं पाई जातीं। जब इनके बिलों पर आक्रमण होता है तब वे घबड़ा जाती हैं और रक्षा के फुटकर उपाय काम में लाती हैं। पशु-विज्ञान विशारदों का मत है कि बन्दरों का समाज खूब संगठित होता है और मानव-समाज से मिलता-जुलता है। उनके संगठन की मिसाल जिब्राल्टर के पुराने काग़ज़-पत्रों के देखने से मिलती है, जहाँ बन्दरों की किसी समय एक पार्लमेण्ट थी।

पशुओं में परस्पर सहयोग—

जानवरों के समाज में एक विचित्र बात देखी जाती है, वह है बिल्कुल असमान जीवों में एक दूसरे के लाभ के लिये उनका

सहयोग। इस सहयोग में उन 'गेट क्रैशर्स' की-सी बात नहीं है जो चींटियों और मधु मक्खियों के घोंसलों में घुसे रहते हैं और जो उनसे पाने वाले लाभों के बदले में कुछ देते भी हैं। उपर्युक्त सहयोग का एक साधारण उदाहरण तपस्वी केकड़ा है, जिसके उभरे हुए सिप्पीदार मँगनी वाले घर में बहुधा अनेक समुद्री फूल चिपके रहते हैं। जब केकड़ा भोजन करता है तब ये समुद्री फूल उन सारे टुकड़ों को झपट लेते हैं जिन्हें वह खुथर-खुथर कर फेंकता जाता है। यदि कोई मछली सिप्पी सहित केंकड़े को निगल जाना चाहता है, तो वही समुद्री फूल मर्मभेदी डोरे निकाल कर फेंकने लगते हैं, और इस प्रकार केंकड़ों को बचा लेते हैं। अतएव पारस्परिक लाभों का एक बड़ा भारी वास्तविक विनिमय होता है, यद्यपि यह लाभ सदा बराबर के नहीं होते, क्योंकि कुछ समय में समुद्री फूल इतने मोटे और संख्या में इतने अधिक हो जाते हैं कि वे अपेक्षाकृत सिप्पी का ज्यादा हिस्सा ले लेते हैं और केंकड़े को बाध्य होकर ऐसी दूसरी सिप्पी ढूँढ़नी पड़ती है जिसमें कम अतिथि निवास करते हों।

इसी का एक समरूप उदाहरण मैदानी गिलहरी उपस्थित करती है, जो अमरीका की बिल बनाने वाली एक छोटी सी दंशक है। उसके बिलों पर 'रेटिल स्नेक' (एक प्रकार के सर्प जिनके चलने पर खड़खड़ाहट का शब्द उत्पन्न होता है) और उल्लुओं का धावा होता है। उल्लू और साँप गिलहरी के और स्वयं एक दूसरे के बच्चों को खाते हैं। वे एक दूसरे के साथ के इच्छुक नहीं होते, उन्हें तो स्वतन्त्रता से मिलने वाले भोजन और आश्रय की चाह होती है। अतः शाकाहारी गिलहरी चंद्रमा की रोशनी में भाग जाने का उपाय ग्रहण करती है और जाकर शान्ति से किसी दूसरे स्थान में उस समय तक रहती है जब

तक कि अनामंत्रित अतिथि वहाँ फिर न आ जायें और उसके कष्ट पुनः न आरम्भ हों।

सेवाओं के बदले में--

अफ्रीका और भारतवर्ष के अनेक भागों में सफ़ेद छोटे प्रकार के बगुले और बन्दर बहुधा वृहदाकार और भयंकर आखेट योग्य पशुओं की पीठ पर सवार होते देखे जाते हैं, किन्तु वे माँसाहारी पशुओं पर कभी भी सवारी नहीं करते।

बुलबुल की तरह की चिड़िया अक्सर निर्भयता के साथ दैत्याकार घड़ियालों के खुले हुये जबड़ों के भीतर-बाहर आती-जाती हुई देखी गई हैं। ऐसी परिस्थितियों में छोटे-छोटे जीवों को उन सेवाओं के बदले में सहन किया जाता है जो वे तंग करने वाले परोपजीवियों को बाहर निकाल कर किया करते हैं।

इस प्रकार का उदाहरण 'रुक' नामक एक प्रकार का कौआ है जो बहुधा भेड़ों की पीठ पर सवार होता है। वह कौआ भेड़ के बालों में से जुएँ और किलनियों को बीन-बीन कर निकाल लेता है और जाड़े में जब कि अन्य प्रकार का भोजन मिलना कठिन होता है, न केवल तैयार भोजन सरलता से प्राप्त कर लेता है बल्कि साथ ही साथ गरम बिछौने का लाभ भी उठाता है।

पुराने के बदले में नये शरीर

हमारे शरीर लगातार घिसते रहते हैं और फिर नये होते रहते हैं। यदि किसी घटना से हमारे शरीर का कोई अंग नष्ट भी हो जाता है तो एक सीमा तक उसकी पूर्ति हो सकती है। आधुनिक चीरफाड़ ने इतनी उन्नति कर ली है कि हाथों या

जंघाओं से माँस लेकर दर्शनीय कान और नाकें बनाई जा सकती हैं।

परिवृद्धि की सीढ़ी में जीव जितना ही बड़ा होगा उतना ही कम वह इस योग्य होगा कि वह क्षीण अंगों की पूर्ति कर सके। कृमि-कीटों के समान सरल जीवों को काटकर यदि दो टुकड़े कर दिये जायँ तो वे अपने को नये सिरे से बना लेते हैं और समुद्री फूल के समान निम्नकोटि के जीव तो और भी अपने को व्यवस्थानुकूल बना लेने वाले होते हैं। जब काटकर उनके कई टुकड़े कर दिये जाते हैं, तब उनका प्रत्येक टुकड़ा कुछ समय में एक सम्पूर्ण जीव बन जाता है। एक-कोषीय जन्तु के समान कुछ जीव स्वेच्छा से अपने को दो भागों में विभाजित करके स्वभावतः द्विगुणित होते रहते हैं। सितारा मछलियाँ, जिनके सितारे की तरह पाँच हाथ होते हैं, अपने क्षीण अंगों को फिर से नया कर लेती हैं। ये सिप्पियों को खाती हैं। आजकल इन्हें खाद के काम में लाया जाता है। समुद्री ककड़ियाँ, वास्तव में बड़ी-बड़ी सितारा मछलियाँ होती हैं। इन्हें जब अपच होता है, तब ये अपने समस्त अंतरंग अंगों को वमन कर देती हैं और फिर एक नया समूह उपजा लेती हैं।

क्षीण अंगों को नए सिरे से उपजाना--

खोलदार जानवर—जैसे केंकड़े और झींगा मछली—अपने क्षीण अंगों को नये सिरे से उपजा लेते हैं, किन्तु यह गति-विधि बड़ी धीमी होती है। जब किसी केकड़े का पंजा या टाँग जख्मी हो जाती है तब वह उस अंग को एक विशेष जोड़ पर से गिरा देता है और कुछ समय तक कठिनाई से जीवन व्यतीत करता है। किन्तु जब दुबारा वह अपना ऊपरी खोल परिवर्तित करता है तब पुराने अंग के स्थान पर एक नया अंग प्रकट हो जाता

यह अंग शुरू में केवल एक नन्हा-सा नमूना मात्र होता है और काम में कम आता है। और इसके पहले कि नया अंग साधारण आकार तक पहुँचे कई खोलों को परिवर्तित करने की आवश्यकता पड़ती है।

अनेक मछलियों की पूँछ का भाग उस समय नष्ट हो जाता है जब वे शिकार खाने वाले शत्रुओं से जान बचाकर भागती हैं। वे नई पूछें नहीं उपजा सकतीं, किन्तु उनके पिछले और नीचे वाले पखनियाँ या सुफ़ने अन्त में पीछे पहुँच कर मिल जाते हैं और थोड़ा-बहुत पूँछ का काम देते हैं। पीछा किया जाने पर छिपकलियाँ स्वभावतः अपनी दुमें छोड़ भागती हैं। स्नायु-मंडल की शक्ति गिराई हुई पूँछ को ऐसे फड़फड़ाया करती है मानों वह जीवित है। इससे पीछा करने वाले का ध्यान आकर्षित हो जाता है और छिपकली को भाग जाने का अवसर मिल जाता है। कुछ काल में ठूँठ से पूँछ उग आती है और जिस स्थान से पूँछ गिरी थी उस पर एक चिन्ह सदा के लिये बना रह जाता है। यदि पूँछ में केवल चोट ही लग गई है तो घाव के स्थान से अपने आप एक नई पूँछ उगने लगती है। यही दशा अन्य अंगों की भी होती है किन्तु अतिरिक्त अंग, दो-नोकों वाली पूँछ की तरह सहायता की अपेक्षा रुकावट का अधिक कारण प्रमाणित होता है और ज्यादा हिलने-डुलने के अयोग्य होता है।

यद्यपि गिरगिटान को छिपकलियों की श्रेणी में गिना जाता है, किन्तु वह क्षीण पूँछ को पुनः नहीं उगा सकता और जब एक बार गिरगिटान की दुम नष्ट हो जाती है तब वह अपने शत्रुओं का सरल शिकार बन जाता है।

मांस-वृद्धि--

स्तनपायी और पक्षी क्षीण अंगों को फिर से नहीं उपजा सकते, यद्यपि उनका क्षीण माँस भर जाता है और टूटा हुआ दाँत उग आता है। लण्डन के जान हंटर (१७२८-१७९३) ने यह प्रमाणित कर दिया है कि माँस में आकार देने वाली प्रकृति है। उनके इस कार्य से आकार को देने वाली जर्राही की नींव पड़ी है जिसके द्वारा सब प्रकार की भयंकर चोटों की पूर्ति की जा सकती है। आजकल तो उसके द्वारा "चेहरा बदलने" का दुरुपयोग भी किया जाने लगा है।

भोजन के लिये जानवर

जिन जानवरों का माँस मनुष्य के खाने के काम में आता है वे हैं हिरन, गाय, भैंस, सुअर, बकरी, भेड़, गैंडा आदि। कहीं-कहीं शेर का भी माँस खाया जाता है और इस विश्वास से कि इसके खाने से खाने वाले में शेर के कुछ गुण आ जायेंगे। २०० प्रकार की मछलियों में से केवल २० प्रकार की मनुष्य के खाने के काम में आती हैं। कुछ मछलियों के माँस में विषैले क्षार होते हैं अतः उन्हें लोग नहीं खाते।

घड़ियाल के माँस में बछड़े के माँस का-सा स्वाद होता है—

कुछ लोग सरीसृपों को खाने के नाम से बिचकेंगे किन्तु वे भूल जाते हैं कि कछुए का सूप बहुत बढ़िया और लज़ीज़ खाना समझा जाता है। अमरीका में कछुए और छिपकलियाँ बड़े चाव से खाये जाते हैं। मगर और घड़ियाल का माँस स्वाद में बछड़े के माँस के समान होता है। अमरीका और फ्रांस में खाने के लिये मेंढक खूब पाले जाते हैं। किसी-किसी देश में साँप का

भी माँस खाया जाता है। मेक्सिको में 'एक्सोटोल' नामक एक प्रकार की गोह भी खाने के लिये पाली जाती है। ग्रेट ब्रिटेन में कस्तूरा मछली, घोंघे सदफी मछली, सदफी घोंघा, झींगा, दो-शाखा मछली आदि घोंघे, खूब खाये जाते हैं। केकड़ा ताज़ा भी खाया जाता है और टीन में बन्द करके भी बिकता है।

कीड़े खाना—

सरीसृपों के समान कीड़े-मकोड़े आमतौर से नहीं खाये जाते किन्तु कृमिदाना केक के साथ बड़ी बढ़िया वस्तु समझा जाता है। कोचीनील कृमि दाना छोटे वृक्ष-खटमलों के सुखाये हुये शरीर से प्राप्त किया जाता है। तेल में तलकर टिड्डियाँ तो बड़ा स्वादिष्ट समझी जाती हैं। सेमाओं में 'पलोल्स' नामक कृमि की फ़सल खाने के लिये तैयार की जाती है। अण्डा तो हर प्रकार का ही एक अच्छा भोज्य पदार्थ समझा जाता है। अफ्रीका महाद्वीप के वेल्जियन काँगों प्रदेश के रहने वाले अर्धसभ्य संगवतू लोग भुनी हुई दीमक खाते हैं। उनके यहाँ फेरी वालों के पास दीमक की बोरियाँ भरी रहती हैं।

पालक-पिता

कुटुम्ब का पालन-पोषण सर्वत्र माता का कर्तव्य समझा जाता है। पर बहुत से नर जानवर एक कुटुम्ब के पोषण करने ही में केवल सहायता नहीं करते बल्कि उसकी सारी देख-भाल का बोझा भी उन्हीं के सिर पर पड़ जाता है। कुछ साधारण समुद्री कृमि, जिनकी पथरीली नलियाँ उनके घोंघों को ढके रहती हैं, पालक-पिता होते हैं। इनकी एक साधारण जाति जो मछली के शिकार में चारे का काम देती है, न केवल अण्डों को सेती है

बल्कि अण्डे देने के पश्चात् माता को खा जाती है—ताकि वह स्वयं अण्डों को न खा जाये।

अनेक साधारण मत्स्य पालक-पिता होते हैं। एक छोटी-सी मत्स्य जिसकी पीठ पर काँटे होते हैं, इसका एक अतिज्ञात उदाहरण है। यह सर्वत्र पायी जाती है। वसन्त ऋतु में नर का सीना लाल और चमकीला हो जाता है, इस कारण मादाएँ उसकी ओर आकर्षित हो जाती हैं। इन्हें वह खर-पतवार के अपने बनाये हुये गोलाकार घोंसले में लिवा जाता है और ज्योंही घोंसले में अण्डे रख दिये जाते हैं त्योंही वह उनकी रक्षा करने लगता है। वह इन अंडों को अपने परों से हवा दे-देकर सेता है और इस प्रकार उन पर लगातार ताजे पानी की धार पहुँचाता रहता है। वह बलपूर्वक घुसने वाले समस्त मेहमानों भगाता रहता है, विशेष कर स्वजातिभक्षी माताओं को। और अंडों से निकलने वाले बच्चों की रक्षा उनके निकल आने के कुछ सप्ताह बाद तक करता रहता है, यहाँ तक कि वह अपने परिश्रम से पूर्णतया थककर अन्त में मर जाता है।

१४०००० अण्डों की रक्षा—

यदि किसी को देखने की इच्छा हो तो वह समुद्र के किनारे जाकर 'बुलहेड्स', खारदार, पर वाली और अन्य मछलियों को, उक्त प्रकार अंडों की रक्षा करते हुए देख सकता है। तितली-सा खारदार मत्स्य अण्डों को समेट कर एक घोंघे के भीतर ले जाता है और उन्हें भीतर रखकर स्वयं मुहाने के सामने आकर अपना सिर अड़ा देता है और मार्ग को बन्द कर देता है। सुरमई रंग की भद्दी खारदार मछली का नर १४०००० अण्डों की रक्षा करता है, जो एक चट्टान के नीचे चिपके रहते हैं। मछली केकड़े और मुर्गाबी आदि, अनेक शत्रुओं को उसे भगाना पड़ता है। इस बड़ी परीक्षा के पश्चात् नर अधिक काल तक नहीं बच

पाता। नर समुद्री-घोड़ा और नली वाली मछली दोनों ही अपने-अपने निचले भागों में लगे हुए विशेष झोलदार थैलों में अंडों का "पोषण" करते हैं। नली वाली मछली की पूँछ में ऐसी तहें होती हैं जिन्हें अंडों का स्टोर कहना उपयुक्त होगा। इस जाति में मत्स्य ही, यानी पिता ही अंडों की रक्षा करता है। इनके थैले रक्त-पात्रों से संयुक्त होते हैं, अतः वे नाभिनाल के रक्त-पात्रों के जाल की नकल-सी मालूम देते हैं। नाभिनाल भ्रूण का पालन करता है, चाहे वह भ्रूण गाय का हो, कुत्ते का हो और चाहे मनुष्य का हो।

नर मेंढक निपुण दाइयाँ होते हैं—

बहुत से नर मेंढक निपुण दाइयाँ होते हैं। उष्ण देशों की अनेक जातियाँ अंडों को निगल जाती हैं और अपने शरीर के थैलों में उन्हें लेकर यात्रा करती हैं। यूरोप के कुछ नर मेंढक अंडों को अपनी टाँगों में लपेट लेते हैं, क्योंकि जिस समय अंडे उत्पन्न होते हैं उस समय वे एक डोरी में बँधे रहते हैं या लड़ी की तरह आपस में जुड़े रहते हैं। इस प्रकार नर मेंढक उन्हें कई सप्ताह तक लिये-लिये फिरते हैं। दिन में वे छिपे रहते हैं और रात को चुपके से निकाल कर अंडों को ओस में तर करते हैं और जब उनमें से बच्चे निकलने वाले होते हैं तब उन्हें किसी पास ही के तालाब में रख देते हैं।

समुद्री मकड़ा नामक थलचर चट्टानों के आस-पास एक गठरी में अपने अंडे बाँध कर घूमता रहता है। शुतुर्मुर्ग़ परिवार के प्रत्येक सदस्य की यह एक विशेषता होती है कि वह पालक-पिता होता है। वह अपना भद्दा घोंसला बनाता है और महीने भर तक या उससे अधिक अंडों के ऊपर बैठा हुआ उन्हें सेता रहता है।

शुतुर्मुर्ग़ी उस जाति के पक्षियों में से है जिसमें पिता पर दाई का दायित्व रहता है। तीस-तीस अंडे यह अकेले सेता है। इसकी तरक़ीब भी ख़ूब मज़े की रहती है। यह बड़े-बड़े अंडों को गर्म बालू में ढक कर रख देता है। सूरज की धूप उसका कार्य शीघ्रता से कर डालती है। "पैंग्वुइन" पक्षी में नरों के कर्तव्य इतने कठोर नहीं होते, यद्यपि वे भी अपने हिस्से का कार्य कर देते हैं। पैंग्वुइन पक्षी एक समुद्री चिड़िया होती है जो उत्तरी प्रदेशों में पाई जाती है। उसके पर पंखेदार होते हैं जिनकी सहायता से वह पानी के नीचे तैर सकती है। "पैंग्वुइन" मादा को जब भोजन या आराम की आवश्यकता होती है तब वह ज़ोर से अपने साथी को बुलाती है और परिवार की देख-भाल का भार उसे सौंप देती है।

'मारमोसेट' एक प्रकार का बन्दर होता है जो अमेरिका के गरम हिस्सों में पाया जाता है और उसकी पूँछ गुच्छेदार होती है। स्तनपायियों में "मारमोसेट" ही एक ऐसा नर होता है जो पालक पिता का काम करता है। केवल उस समय को छोड़कर जब माता उसे भोजन कराती है बच्चा पूर्णतया नर ही की रक्षा में रहता है। वह बच्चे को लिये-लिये फिरता है; पहले अपने कूल्हे पर और कुछ दिन बाद अपनी पीठ पर। पिता की देख-भाल में उस समय तक ढिलाई नहीं आती जब तक कि बच्चे का बोझ इतना भारी नहीं हो जाता कि उसे लेकर चलना असम्भव हो जाय।

दीर्घाकार सर्प और कृमि

बहुधा साँपों की लम्बाई बढ़ाकर कही जाती है किन्तु कहानियों की लम्बाई से सत्य बात कुछ और भी विचित्र होती है।

सबसे लम्बा साँप जो आज तक ज्ञात हुआ है वह पनिआ बोआ जाति का या एनेकोण्डा है।जो प्राचीनकाल में मिलता था और इसकी लम्बाई अट्ठावन फुट थी।

बोआ एक बग़ैर ज़हरीला साँप होता है जो शिकार को दबा कर मार डालता है अर्थात् एक प्रकार का अजगर है। एने-कोंडा भी एक प्रकार का अजदहा है जो पहले लंका में पाया जाता था और अब दक्षिणी अमेरिका में मिलता है।

अफ्रीका के अजगर—

सबसे लम्बे जीवित साँप अफ्रीका के 'पाइथन' और ब्राज़िल के 'एनेकोण्डा' होते हैं। इन दोनों की अधिक से अधिक लम्बाई तीस फुट की होती है। इससे बड़े उदाहरणों को क़िस्सों की गपोड़ेबाज़ी समझना चाहिये। इसी तरह उन कहानियों को भी समझना चाहिये जिनमें कहा जाता है कि अजगरों ने घोड़ों और भैंसों को मार डाला और उन्हें निगल गए। वे इतने बलवान अवश्य होते हैं कि बड़े-बड़े स्तनपायियों को मार डालें, किन्तु उनके मुँह इतने चौड़े नहीं होते कि उन्हें निगल जायें।

बड़े से बड़े समुद्री साँप, जो उष्ण समुद्रों में पाये गये हैं, छै या आठ फुट से अधिक लम्बे नहीं होते।

जीवित डोरी—

जब कुछ जीवित कीड़ों की लम्बाई से उन साँपों की लम्बाई की तुलना की जाती है तो उनकी लम्बाई बिल्कुल तुच्छ मालूम देती है। सबसे लम्बे फ़ीते की शक्ल के कृमि या केंचुए जो मनुष्य के शरीर से निकाल कर नापे गए, हैं, ८० फुट से ऊपर तक के देखे गये हैं। इनसे भी अधिक लम्बे जूते के फीते की

तरह के कृमि होते हैं। ये अक्सर समुद्र के किनारे चट्टानों के नीचे मिलते हैं। पहले देखने में यह कृमि बछड़े के जिगर का-सा ढेर मालूम देता है किन्तु छड़ी से छूने पर वह धीमे-धीमे किलबिलाने लगता है और मट्ठर चाल का एक कीड़ा दिखलाई देने लगता है। तब उसकी लम्बाई असीम मालूम देती है। यह ९० फुट तक का देखा गया है। इसके एक सिरे पर प्याली के आकार का मुँह होता है।

केवल आस्ट्रेलिया में पाया जाता है—

संसार का सबसे लम्बा केचुआ १२ फुट का होता है और वह आस्ट्रेलिया के उर्वर दक्षिणी सूबे में पाया जाता है। यह कृमि लगभग एक इञ्च मोटा होता है और सहज ही में टूट जाता है। वह बहुत गहराई तक खोदता चला जाता है और वहाँ करीब तीन इञ्च लम्बे, कड़े और सींगदार अंडे देता है। यह कृमि बहुधा हँसने वाले 'जैकास' का शिकार होता है। 'जैकास' छोटे-छोटे कीड़ों पर निर्वाह करता है। यह किलकिला अर्थात् राम-चिरइया जाति का एक पक्षी होता है और तूती परिवार का एक सदस्य है। शिकारी पक्षियों का इसका माँस अस्वादिष्ट मालूम होता है इसलिये यह बचा रहता है। यह एक लम्बी और थका देने वाली रस्साकशी के पश्चात् इस ८ या १० फुट लम्बे भोजन को सुख से चट कर जाता है।

योनि-परिवर्तन

मनुष्यों के विचित्र योनि-परिवर्तन कभी-कभी समाचार पत्रों में देखने में आते हैं। किन्तु जो बात हमें विचित्र-सी मालूम

देती है वह अनेक निम्नकोटि के जीवों में एक बिल्कुल साधारण घटना होती है।

वार्षिक योनि-परिवर्तन

कस्तूरा मछली अपना जीवन नर के रूप में आरम्भ करती है, फिर बदल कर मादा हो जाती है। वह अपने जीवन भर प्रति वर्ष योनि-परिवर्तन करती रहती है। इङ्गलिस्तान में 'स्लिपर लिम्पेट' नामक एक छोटा-सा घोंघा होता है जो चट्टानों से चिपका रहता है। यह सिप्पी नर से बदल कर द्विलिंग अर्थात् एक ऐसा प्राणी बन जाता है जिसमें स्त्री और पुरुष दोनों के लक्षण होते हैं। और फिर उक्त प्राणी से बदल कर मादा हो जाता है। इस प्रकार उसकी संख्या बड़े वेग से बढ़ती जाती है और वह सिप्पी की मछली का गला घोंट देता है।

हौज़ों में पाली जाने वाली मछलियों में मेक्सिको की तलवार की-सी दुम वाली छोटी मछली बड़ी लोकप्रिय होती है। साधारणतया इनकी आबादी में मादाओं की संख्या अधिक होती है, और मालूम ऐसा देता है कि जन-संख्या की बराबरी करने ही के अभिप्राय से वे कई बार अंडे देने के पश्चात् क्रियात्मक नरों में परिवर्तित हो जाती हैं।

प्राचीन समय में इस योनि-परिवर्तन के सम्बन्ध में लोगों की विचित्र धारणाएँ थीं। फिर भी ऐसी अजूबा चिड़ियाँ देखी गई थीं। हाल में मुर्गियों के ऐसे अनेक उदाहरण मिले हैं जो उत्तेजक (कुड़क) हो गई हैं और मुर्गों की तरह बाँग देने लगी हैं। इसके विपरीत अनेक मुर्गे अंडे देते हुये और उन्हें सेते हुए देखे गये हैं। जननेन्द्रियों का एक रोग-विशेष ही इन बातों का ज़िम्मेदार होता है।

———

दवाओं में जानवर

बहुधा पाठकों ने देखा होगा कि जंगली जड़ी-बूटी बेचने वाले बनजारे अपनी दुकानों पर ऊसड-साँडे भी रखते हैं। इससे पता चलता है कि दवाओं में जानवरों का एक महत्वपूर्ण भाग होता है। मध्यकाल में चूहे, छछूँदर, मेंढक, घोंघे आदि अनेक जानवरों से कई प्रकार की दवाएँ तैयार करके प्रयोग की जाती थीं। अभी ५०—६० वर्ष हुये तब तक काले साँप की चर्बी कई रोगों में डाक्टरों द्वारा प्रयोग में लाई जाती थी और आज भी कहीं-कहीं घोंघे की गोली मिट्टी मस्सों के इलाज में प्रयोग की जाती है।

बन्दर की ग्रन्थियाँ मनुष्य में पुरुषत्व लाने के लिये प्रयोग की जाती हैं। चेचक का टीका लगाने के लिये जो दवा इस्तेमाल की जाती है वह भी जानवरों ही से, बिना उन्हें हानि पहुँचाये हुये प्राप्त की जाती है। साँप का विष ख़ून बन्द करने में और मिर्गी आदि रोगों में प्रयोग किया जाता है। कई रोगों में काड मछली का तेल तो रामबाण औषधि समझा जाता है। शरीर के किसी भाग से ख़ून निकालने के लिये जोंकों का प्रयोग तो बहुत पुराना है और आज भी उसका प्रयोग होता है, विशेष कर कान और आँख के पास का ख़ून निकालने के लिये। ऊदबिलाव के तेल से 'कैसटोरियन' नामक दवा तैयार की जाती है जो औषधि के अतिरिक्त सुगन्ध का भी काम देती है। झींगुर का गाढ़ा तेल छाला डालने के काम में प्रयोग किया जाता है। कस्तूरी हिरन की नाभि से प्राप्त की हुई कही जाती है। अम्बर दो-शाखा मछली की कड़ी चोंच से तैयार की जाती है और तैलीय ह्वेल की आँतों में भी मिलती है, जो इन दो-शाखा घोंघों को खाती है।

विषैले जीव

विष एक मात्रा की बात है। एक बच्चे की मुँह की लार से विभिन्न छोटे-छोटे जानवरों की उस समय मृत्यु होते देखी गई है जब वह लार उनके रक्त प्रवाह में प्रवेश करा दी जाती है। जिन जानवरों के शरीर में विष प्रयोग करने के लिये पाया जाता है उनकी संख्या बहुत बड़ी नहीं है और जो है भी उनके विषों के गुणों में भी बड़ा अन्तर होता है।

हज़ारों आदमी प्रति वर्ष साँप काटने से मरते हैं—

आस्ट्रेलिया का 'डकमोल' ही एक ऐसा स्तनपायी है जिसमें विष होता है। उसके नर की प्रत्येक पिछली टाँग के भीतर की ओर एक तेज़ और झुका हुआ काँटा होता है। ये काँटे पोले होते हैं और उनका सम्बन्ध विषैली ग्रन्थियों से होता है। उनके लगने से मनुष्य के शरीर में बड़ी भयंकर पीड़ा होती है किन्तु कोई मृत्यु होती हुई नहीं देखी गई है। सर्पों की जीवित जातियों में से लगभग एक तिहाई के विषैले होते हैं, जिनके विष का अन्तर एक बर्र के काटने से लेकर कुछ क्षणों में मनुष्य की मृत्यु उत्पन्न कर देने तक होता है। भारतवर्ष में प्रति वर्ष लगभग ४०००० मौतें साँपों के काटने से होती हैं, अफ्रीका में सौ-पचास और अमेरिका में मुश्किल से एक-आध! सर्प का विष लार की परिवृद्धि ही है और वह दो बड़ी-बड़ी ग्रन्थियों में रहता है जो सिर के दोनों ओर एक-एक होती हैं। जब साँप काटता है तो यह विष एक पोले दाँत के द्वारा उस स्थान पर पहुँचा दिया जाता है।

महा विषैले सर्प—

अत्यन्त प्राणनाशक सर्प अफ्रीका के 'मम्बास' और 'पफ़' नामक ज़हरी साँप, हिन्दोस्तान का कोब्रा, मलाया देश का राज

कोब्रा और अमरीका के मूँगे के सदृश साँप होते हैं। दक्षिण अफ्रीका के थूकने वाले कोब्रा में एक विचित्रता होती है कि वह अपने शिकार पर विष की दो धाराएँ पिचकारी की तरह छोड़ता है। आँखों पर इन पिचकारियों के पड़ने से क्षणिक अन्धापन आ जाता है और यदि किसी खराब या छोटे-मोटे घाव में यह विष प्रवेश कर जाता है तो मृत्यु हो जाती है। साधारण मेंढक अपने अधिमाँस या मस्सों से जो उसके सारे शरीर पर होते हैं एक विषैला पदार्थ निकालता है। इसका प्रभाव मनुष्य के शरीर पर वैसा ही होता है जैसा कि बड़े जोर की जूड़ी आने पर होता है। कोलम्बिया का वृक्ष पर रहने वाला एक मेंढक ऐसा मारक विष पसीने के रूप में उत्पन्न करता है कि वहाँ के आदिम निवासी अपने तीरों की नोंकों में उसे लगाते हैं।

अनेक मछलियों (जैसे कि टायगरफ़िश और स्टिंगरेज़) के काँटों में ज़हर होता है। इङ्गलिस्तान के आस-पास के समुद्रों में मछलियों की दो जातियाँ पाई जाती हैं जिन्हें नश्तरी मछली कहते हैं। इनकी पीठ पर अत्यन्त तेज़ काँटे होते हैं और इनसे जो घाव होते हैं वे बहुधा पक जाते हैं। इनके पिछले परों और काँटों का सम्बन्ध साँपों की तरह विषैली ग्रन्थियों से होता है। इनके विष को दूर करने के लिये 'परमेंगेनेट पोटाश' (लाल दवा) बड़ी लाभदायक होती है। जो घोंघे विषैले समझे जाते हैं वे प्रायः उष्ण समुद्रों में मिलते हैं और देखने में बड़े सुन्दर होते हैं। इन्हें कोकल कहते हैं। इन कोकलों की सिप्पियों में रहने वाले जीवों के विषैली ग्रन्थियाँ और पोले दाँत होते हैं। यह बड़े ज़ोर से काट कर घाव कर देते हैं।

समस्त खनखजूरों, बिच्छुओं और मकड़ियों के ज़हरीली ग्रन्थियाँ और नोकदार दाँत होते हैं। बिच्छू की ग्रन्थियाँ उसकी

पूँछ के सिरे पर होती हैं। सबसे जहरीली मकड़ी अमरीका की "काली राँड" होती है। इसका यह नाम इसके काले रंग और नारी स्वभाव के कारण पड़ा है जो प्रायः अनेक मकड़ियों में होता है कि वह अंडों के फलित होने के पश्चात् अपने पति को खा जाती है। काली राँड के काटने से अक्सर मृत्यु नहीं होती।

मकड़ी मकड़े से प्रेम करती है, मगर प्रेम करने के साथ ही साथ उधर गर्भ धारण होती रहती है इधर मकड़ी मकड़े को खाती जाती है। इङ्गलिश चैनेल के किनारे एक कीड़ा इस क़िस्म का मिलता है कि नर और मादा दोनों के बीच में बालू की एक ही नली होती है, जिसमें मादा अंडे रखती है। नर उस नली पर अपने शरीर की लय-मय गति से थोड़ा-थोड़ा पानी बहाता है, ताकि वे जल्दी से सिंक जाये। मगर मादा अंडे देने के बाद अत्यन्त अशक्त हो जाती है। उसके लिए नये कीड़े को जन्म देना मरण के समान है। नर इस मादा को इतना दुर्बल देखकर गम्भीरता पूर्वक चटकर जाता है। बेचारी कीड़ों को माता के लिए तो वह जल-दान मरण है परन्तु पिता के लिये वह सुन्दर भोजन बन जाता है।

पूँछ आदमी की और दूसरों की

यह बहुधा सुना जाता है कि मनुष्य ने अपनी पूँछ बैठ-बैठ कर घिस डाली है। यह बात सत्य नहीं है। बहुत से बन्दर और दूसरे जानवर—जैसे मारमोट नामक गिलहरी और ऊदबिलाव अपनी पूँछ के ऊपर बैठने में बहुत-सा समय खर्च करते हैं किन्तु तो भी उनकी अत्यन्त सक्रिय पूँछें बनी हुई हैं।

कम होकर कुछ छोटी हड्डियाँ रह गई हैं—

धरती पर निरन्तर सीधे चलने के कारण मनुष्य की पूँछ कम होकर छोटी हड्डियों के रूप में रह गई है। सीधे चलने में उसे पूँछ की सहायता लेने की तनिक भी आवश्यकता नहीं पड़ती। अतः उसके लिये वह बेकार है। परन्तु यदि वह फिर वृक्षों पर रहने लगे और शाखाओं पर दौड़-धूप करने में अधिक समय व्यतीत करे तो उसे पूँछ के स्थान में किसी जोड़ की वस्तु की ज़रूर आवश्यकता होगी।

एण्डमान, फिलीपाइन्स और अन्य उष्ण टापुओं में कुछ जंगली जातियाँ हैं जो अपना कुछ समय वृक्षों की पतली डालियों पर चलने-फिरने में व्यतीत करती हैं। ये लोग वैसे ही एक मीज़ान बराबर करने वाले लम्बे बाँस का प्रयोग करते रहते हैं, जैसा कि सरकस वाले करते हैं। चूहा, गिलहरी या दूसरे वृक्ष वाले जीव इसी प्रकार अपनी पूँछ का प्रयोग करते हैं, जिस ओर बोझ बराबर करने की आवश्यकता होती है उसी ओर पूँछ को दाहिनी या बाईं ओर घुमा देते हैं।

पूँछ हाथ और लंगर का काम देती है—

मेरुदण्डीय प्राणियों में पूँछ रीढ़ का एक टुकड़ा है जो उस धुँधले भूतकाल की बची हुई निशानी है, जब कि प्रथम मछली समुद्र से रेंग कर किनारे पर जा लगी थी और उसने चलने योग्य अंगों की परिवृद्धि की थी। पूँछ अनन्त कामों में लाई जाती है, और बहुधा भिन्न-भिन्न जीव जो घटनावश एक ही समान जीवन व्यतीत करते हैं, पूँछ को भी एक ही तरह से प्रयोग करते हैं। मकड़ी, बन्दर, वृक्ष-साही, हिमालय की रीछ-बिल्ली, ब्रेज़िल का शरद-भालू, गिरगिट, छिपकली और समुद्री-

घोड़े के नाम से प्रख्यात मत्स्य पूँछ को उस वस्तु के पकड़ने में हाथ की तरह प्रयोग करते हैं जिसे वे लंगर के समान इस्तेमाल करना चाहते हैं।

गिरगिटान अपने शरीर की लम्बाई से भी अधिक दूर तक अपनी जीभ निकाल सकता है, यदि वह अपनी पूँछ के सहारे से अपने को किसी शाखा में अटका न ले, तो उपयुक्त प्रयत्न में वह सिर के बल गिर पड़ेगा।

शेर वे बिल्लियाँ हैं जिन्होंने पेड़ों पर चढ़ना छोड़ दिया है, किन्तु उनकी पूँछ मक्खी उड़ाने वाले चँवर के काम के लिये बनी हुई है, और यही काम वह हाथी, घोड़े, बैल, और इन्हीं के समान खुर वाले जानवरों में करती है। थोड़े से जानवर पूँछ से एक बैठक की चीज़ का काम लेते हैं। कँगारू और बड़े-बड़े बालों वाले बन्दर अपनी पूँछों का सूटिङ्ग स्टूल की तरह प्रयोग करते हैं। कठफोड़वा और परतदार चींटीखोरे किसी खड़ेबल पेड़ के धड़ को दृढ़ता से पकड़ कर अपनी कड़ी पूँछों पर वैसे ही बैठ जाते हैं जैसे कि तार के खम्भे की मरम्मत करने वाला आदमी अपनी रक्षा करने वाली पेटी के सहारे से पीछे लटक जाता है।

कुछ मछलियाँ, जैसे कि मलाया की कीचड़ में कूदने वाली और हिन्दुस्तान की चढ़ने वाली प्रिच नामक मछलियाँ अपनी पूँछों को जमीन पर अपने को आगे बढ़ाने के लिये इस्तेमाल करती हैं, वे उसे नाव की लग्गी की तरह प्रयोग करती हैं। उनकी पूँछ उन्हें ऊपर चढ़ाने में भी सहायक होती है। एक बड़ी गुच्छेदार पूँछ, जैसी कि चींटी-खोरे और गिलहरी की होती है, रात को ढकने वाली तोशक का भी काम देती है। यदि पूँछ वैसी ही मजबूत हो जैसी कि अफ्रीका की चींटी-रीछ की, और उसी तरह

गाँठों और काँटों से सुसज्जित हो जैसी कि अनेक छिपकलियों की, तो वह एक बड़ा प्रभावशाली अस्त्र भी हो जाती है।

खतरे की घंटी के रूप में पूँछ—

खतरे की घंटी के रूप में पूँछ के प्रयोग किये जाने के दो तरीक़े हैं। एक जाना-माना उदाहरण खरगोश की "खटखट" है। यह हिरन की छोटी पूँछ की तरह, जिसके दोनों ओर प्रत्यक्ष प्रकट होने वाले चिन्ह होते हैं, पीछे वालों के लिये मार्ग प्रदर्शन करती है और जिस ओर छिपने के लिए जानवर भागता है उस मार्ग की ओर संकेत करती है।

ऊदबिलाव की पूँछ एक चौड़ी पत्ती की तरह बनी होती है और आठ इञ्च लम्बी तथा आध इञ्च मोटी होती है। तैरने के लिये यह एक प्रभावशाली अंग होती है और जब कोई खतरा आने वाला होता है तब उसे पानी पर ऐसे मारा जाता है कि एक बड़े ज़ोर की आवाज़ उत्पन्न होती है। यही एक ऐसी पूँछ है जो खतरे की घन्टी वाली बन्दूक़ के रूप में इस्तेमाल की जाती है।

पूँछ का प्रथम प्रयोग मछली ने किया था और प्रारम्भिक दशा में वह एक आगे ढकेलने वाले अंग के रूप में काम में आती थी। उसमें साधारणतया पर्याप्त चर्बी एकत्रित रहती है। मरुभूमि के कुछ चूहे और छिपकलियाँ अपनी पूँछ को चर्बी के एक गोदाम के रूप में प्रयोग करते हैं। दुष्काल के समय वे अक्षरशः अपनी पूँछों पर वैसे ही निर्वाह करते हैं जैसे कि ऊँट अपने कोहान पर निर्वाह करता है।

विलक्षण दैत्याकार प्राणी

विकृति और विलक्षण जीव जिन्हें वैज्ञानिक प्राणि-शास्त्र के असंगत कार्य कहते हैं, अक्सर देखने में आ जाते हैं। इन असाधारण जीवों की प्रथम परिवृद्धि का प्रारम्भ अण्डे ही से होता है, ये अण्डे चाहे मनुष्यों के हों और चाहे कीड़े-मकोड़ों के। जब अण्डा पहले-पहल बनता है, तब वह कुछ समय तक एक अकेली समग्रता का व्यवहार करता है। जिस पदार्थ का वह बना होता है उसका बँटवारा व्यापक होता है। किन्तु थोड़े दिनों के पश्चात् सिर, अंग, हृदय आदि बनने लगते हैं अर्थात् उसके कोषीय विभागों का कार्य आरम्भ हो जाता है, और वह छोटे-छोटे कोषों में विभाजित और उप-विभाजित होने लगता है, और अन्त में ये कोष अपने को समूहों के रूप में प्रकट करते हैं, जिनमें से प्रत्येक समूह एक विशेष कार्य करता है। किन्तु यदि प्रारम्भिक अवस्थाओं में कोई घटना हो जाती है तो परिणाम स्वरूप अद्भुत प्राणी का जन्म होता है। जितनी ही निम्नकोटि का जीव होगा उतनी ही अधिक सम्भावना होगी कि ऐसा अद्भुत प्राणी जीवित रह सके। आजकल के वैज्ञानिक युग में यह सम्भव है कि विज्ञान की प्रयोगशाला में अंडे के कोषीय विभाजन के प्रारम्भिक काल में उसकी "डाक्टरी" करके दो सिरवाले मेंढक, एक आँख और दो पूँछ वाली मछली आदि बनाई जा सकें। जितनी उच्चकोटि का जीव होगा उतनी ही कम सम्भावना इस बात की होगी कि अजूबा जीव उन उपकरणों से बच कर सुरक्षित निकल सके जिसमें कि उसका यंत्र चालू हो गया है।

दो सिर का सर्प—

कुछ वर्ष हुए न्यूयार्क नगर के चिड़ियाघर में दो सिर वाला

साँप था। प्रत्येक सिर की गर्दन प्रथक थी और कई इञ्च लम्बी थी। वह पूरी अवस्था का था और लगभग दो फुट लम्बा था। उसके जीवित बच जाने पर बड़ा आश्चर्य था, क्योंकि उससे अनिच्छित आत्म-हत्या का भय रहता था। खाने के समय दोनों सिर अलग-अलग खिलाये जाते थे, नहीं तो वे उस मुख्य आहार नली का अवरोध कर देते जहाँ पर कि दोनों प्रथक आहार-नलियाँ मिलती थीं। उन दोनों के बीच में एक दफ्ती लगा दी जाती थी ताकि वे लड़ें नहीं। किन्तु पहले से सचेत रहने के सारे प्रयत्नों के होते हुए भी अन्त में एक सिर ने दूसरे पर आक्रमण किया और उसे खा गया।

बायाँवर्ती झींगा—

कभी-कभी घोंघों में एक विचित्र अजूबापन देखा जाता है। कोई विशेष बात, जो आज तक पूर्ण रूप से समझी नहीं जा सकी है, अण्डे में ऐसा प्रभाव उत्पन्न कर देती है कि सिप्पी बजाय दाहिनी तरफ मुड़ने के बाईं ओर मुड़ जाती है। संग्रह करने वाले लोग ऐसे उलटे चक्कर के शंखों और सिप्पियों को बड़े चाव से ढूँढ़ा करते हैं। १०००० झींगों में से एक दाहिने के बजाय बाईं ओर को मुड़ता है। बायाँवर्ती झींगा बहुत ही कम मिलता है और सम्भवतः इसीलिये वह संसार के अमूल्य घोंघों में से समझा जाता है।

पतिंगों और तितलियों में आकस्मिक घटना से ऐसे विचित्र अजूबे उत्पन्न हो जाते हैं जिन्हें 'जिनैंडर' कहते हैं। यह योनि की एक पिचोकारी या जरबक्ची है और विरोधी कोषस्थ अवस्थाओं से उत्पन्न हो जाती है। प्रायः कोष्ठ के सन्दूक या पात्र के नीचे की ओर गिर जाने से ऐसा होता है। जीवों में कुछ ही जातियाँ ऐसी हैं जो इस प्रकार के व्यवहार का प्रत्युत्तर देती हैं। जब पूर्ण

कीड़ा निकलता है, तब उसके पंखों में नर और मादा दोनों नमूने की विचित्र मिलावट दिखलाई पड़ती है। दोनों की चिप्पड़े परस्पर ऐसी मिश्रित होती हैं मानों वह एक पुराने फ़ैशन की ऊल-जलूल रज़ाई है।

एक विशेष प्रकार का दूसरा अजूबा केवल कुछ गायों में उत्पन्न होता है। कभी-कभी ऐसे बछड़े उत्पन्न होते हैं जिनका मुँह बुलडाग कुत्तों के पिल्लों से मिलता है, ऐसे अद्भुत् प्राणी प्रायः जन्म लेते ही समाप्त हो जाते हैं।

जन्तु-जगत के बौने

सबसे छोटी स्तनपायी एशिया की नाटी छछूँदर है। अफ्रीका के जवान हाथी की ऊँचाई के सामने बिना पूँछ को उक्त छछूँदर का आकार हाथी का १४४वाँ भाग होता है। हाथी की अपेक्षा छछूँदर के शत्रु अधिक होते हैं। यदि छछूँदर ५० या १०० फुट की ऊँचाई से गिर पड़े तो उसे सिवा एक थोड़ा सा झटका लग जाने के और कोई हानि नहीं होगी, किन्तु यदि इतनी ही ऊँचाई से हाथी गिरेगा तो वह बिलकुल मर ही जायेगा।

मधुमक्खी के बराबर चिड़िया—

सबसे छोटी जीवित चिड़िया "इक्वेडर" की गुनगुनाहट पैदा करने वाल चिड़ियों की एक जाति है। यदि उसके पंख उखाड़ डाले जायँ तो वह रानी मधु-मक्खी से बड़ी न रह जायेगी और तौल में भी रानी मधु-मक्खी के बराबर ही

होगी। अतः यही कारण है कि वह उड़ने में बड़ी शक्तिशालिनी होती है।

इक्वेडर का सबसे छोटा मेंढक यदि वह अपने हाथ पैर समेट ले तो रानी मधु-मक्खी से भी छोटा होता है। वह संसार की छोटी से छोटी मछली के सामने बौना मालूम होता है। संसार की सबसे छोटी मछली फिलीपाइन टापू की झीलों में पाई जाती है, जिसकी नाक से लेकर पूँछ के परों तक की लम्बाई आध इञ्च होती है।

संसार का सबसे छोटा कीड़ा—

कीड़े-मकोड़े छोटे होते ही हैं। उनके छोटेपन ने उन्हें सारी पृथ्वी पर बसने में सहायता की है, क्योंकि वे बड़े चंचल होते हैं। किन्तु उनके छोटेपन ने उनके लिये अन्य प्रकार से रुकावट भी उत्पन्न कर दी है। एक कीड़ा साधारण प्रकार से पानी नहीं पी सकता। यदि वह ऐसा करने का प्रयत्न करता है तो परिणाम यह होता है कि वह पानी में फँस जाता है और वहीं क़ैद हो जाता है। अध्यापक जे० बी० एस० हाल्डेन ने कहा है कि "पानी पीने वाले कीड़े के लिए उतना ही बड़ा भय रहता है जितना कि उस आदमी के लिये होता है जो चट्टान की खड़ी दीवाल पर से अपने भोजन के लिए नीचे झाँकता है।"

संसार का लघुत्तम कीड़ा एक मक्खी होती है जिसे 'एलाफिस' कहते हैं। दोनों पंख फैलाने पर उसकी नाप पनीर के घुन के शरीर से भी छोटी है। पनीर के घुन की तुलना में एक पिस्सू बड़ा भारी जीव होता है। अर्थात् उसके बड़े होने का अनुपात वही होता है जो एक हाथी का छछूँदर के प्रति होता है। तो भी ८०००० पिस्सू तौल में केवल आधी छटाँक होते हैं।

अनुवीक्षण यंत्र से भी अदृश्य—

जीवधारियों में अधिकांश छोटे ही होते हैं और समुद्रों की सारी आबादी के ९९ प्रतिशत बौने ही होते हैं। पहिया-प्राणी जो अति सूक्ष्म होते हैं और सूक्ष्म दर्शक यंत्र ही से दिखलाई पड़ते हैं, खारी और मीठे दोनों प्रकार के जलों में अधिकता से पाये जाते हैं। इनमें का सबसे बड़ा प्राणी १० मिलीग्राम से कम होता है और सबसे छोटा एक ग्राम के १ बटा १०००००० वें भाग से भी कम। ऐसा एक पहिया-प्राणी पेचिश उत्पन्न करने वाले एक-कोषीय कीटाणु से दस गुना बड़ा होता है।

इस मापदण्ड से नीचे अगणित जीवित प्राणी होते हैं, जिनका ठीक-ठीक समीकरण बहुधा संदेहात्मक रहता है। वैज्ञानिकों को उन्हें निश्चयात्मक रूप से प्राणियों और वनस्पति में श्रेणीबद्ध करने में संकोच होता है। ऐसी जीवित वस्तुएँ कीट या कृमि होते हैं। मुँहखुरा-रोग उत्पन्न करने वाले कीट की तरह अनेक कृमि इतने छोटे होते हैं कि वे बड़ी से बड़ी ताक़त वाले अनुवीक्षण यंत्र से भी अदृश्य ही रहते हैं और महीन से महीन छन्ने को भी पार कर जाते हैं। किन्तु उनका अस्तित्व होता है, यह अति स्पष्ट है।

फेफड़े और बिना फेफड़े

लार्ड नुफील्ड ने ब्रिटिश साम्राज्य के प्रत्येक अस्पताल को लोहे का एक फेफड़ा भेंट किया था। यह फेफड़ा उन लोगों को जीवित रख सकता है जिनके फेफड़े स्वयं काम नहीं कर सकते। इस लोहे के फेफड़े को देख कर अनेक लोगों ने यह अनुभव ः। कि साँस लेना वैसा सरल काम नहीं है जैसा कि वह

प्रत्यक्ष में मालूम देता है। साँस लेना वास्तव में जलाना है—प्राणवायु को जलाना। इस जलाने की क्रिया को सम्भव बनाने में भोजन ईंधन का काम करता है।

हम फेफड़े के भीतर हवा को खींच कर ले जाते हैं, इसको रक्त-वाहिनी ग्रहण कर लेती हैं। फेफड़े अधिकतर इन्हीं रक्तपात्रों या रक्तवाहिनियों से बने हुए होते हैं। हृदय के द्वारा हवा सारे शरीर में घूमने के लिये भेज दी जाती है और "सुस्त"—अर्थात् विषैली गैस और नमी जो फेफड़ों में लौट कर आती है पुनः निकाल कर नाक के द्वारा बाहर हवा में फेंक दी जाती है, और नाक ही के द्वारा तुरन्त ताज़ी हवा भीतर आ जाती है। मोटे तौर पर यही ढंग हमारे और समस्त स्तनपायियों के साँस लेने का होता है।

मुँह और गला धौंकनी के रूप में—

पक्षियों में हवा के थैले होते हैं, ये थैले फेफड़ों में लगे रहते हैं। ये अपने में ओषजन को ग्रहण करते हैं, और उसे सारे शरीर ही में नहीं पहुँचाते, किन्तु हड्डियों में भी प्रविष्ट कर देते हैं। इसी से स्तनपायियों की अपेक्षा पक्षियों में अधिक हल्कापन आ जाता है। इसी के द्वारा वे अपार शक्ति प्रदर्शित करने में समर्थ होते हैं, क्योंकि एक पक्षी जब तक वह सोता नहीं मुश्किल ही से विश्राम करता है। हमारे समान ही उनके फेफड़े भी धौंकनियाँ होते हैं जिन्हें पसलियाँ और महा-प्राचीर-परदा चलाते हैं।

एक मेंढक के न तो कोई पसली होती है और न महा-प्राचीर-परदा। इसका मुँह और गला धौंकनी का काम करते हैं। एक मेंढक को जितनी हवा की आवश्यकता होती है उसे वह अपने

नथुनों के द्वारा अक्षरशः निगलता है, मुँह को बन्द रखता है, नहीं तो पम्प करके हवा बाहर निकालना असम्भव हो जाये। यही क्रिया मेंढक की हाँफती हुई सूरत का कारण होती है, जिसे लोग भूल से भय या कम्पन समझते हैं।

अतः पशु-पक्षी, और उभचर तीन भिन्न प्रकार से साँस लेते हैं। किन्तु सब में यह समानता होती है कि साँस लेने के अवों का तर होना आवश्यक है, नहीं तो छोटे-छोटे-रक्त-पात्र ओषजन को सोख नहीं सकते। यही कारण है कि अधिक सूखी हवा में साँस लेना बड़ा कठिन होता है और इसी से हमारी समझ में आ जाता है कि दमें से पीड़ित लोग गीली आबोहवा में क्यों बड़े प्रसन्न रहते हैं।

पूँछ के द्वारा साँस लेना—

पानी में रहने वाली मछलियाँ अपने गलफड़ों के द्वारा बड़ी सरलता से हवा को अपने भीतर ले जाती हैं। इन गलफड़ों का रंग लाल होता है क्योंकि ये अक्षरशः रक्तपात्रों का एक समूह होते हैं। बहुत-सी मछलियों की खाल बड़ी पतली होती है, विशेष कर पुच्छ-पृष्ठ पर। इनका यह पतला चर्म भी ओषजन ग्रहण करने में सहायक होता है। जो मछलियाँ इस प्रकार बनी होती हैं, उन्हें दूसरों की अपेक्षा लाभ रहता है और पानी से बाहर होने पर उन्हें कम कष्ट होता है।

इन्हीं के समान मेंढक और केंचुए भी अपनी त्वचा से बहुत सी ओषजन अपने अन्दर ले जाते हैं और खारदार पर वाली मछली तथा उष्ण प्रदेश की कीचड़ में फुदकने वाली मछली के समान पतली खाल वाली मछलियों की तरह वे किनारे पर भी प्रसन्न रहते हैं, किन्तु शर्त यह है कि उन्हें थोड़ी सी तरी मिलती

रहे। कुछ मछलियों के तैरने वाली खाल-फूली हुई थैली होती जो मुख्यतया उनके उतराने के काम की होती है। वह ऐसी बनी होती है कि वह फेफड़े का काम करती है, आस्ट्रेलिया, अफ्रीका और अमेरिका की फेफड़े वाली मछलियों के उदाहरण बहुत प्रसिद्ध हैं, यद्यपि ये पानी ही में बड़े मजे से रहती हैं, किन्तु पानी से बाहर भी कई मास तक रह सकती हैं।

जमीन पर रहने वाले घोंघों में साँस लेने का एक विचित्र औजार होता है। जब किसी बगीचे का घोंघा चलता है तो उसके ऊपरी खोल का दो तिहाई स्थान एक फूला हुआ थैला ग्रहण कर लेता है—अर्थात् फेफड़ा। घोंघों के दाहिनी ओर खोल के मुँह के पास एक छोटे-से गोल छेद के रूप में इसका द्वार सरलता से देखा जा सकता है।

झिनगों के रोशनदान होते हैं—

कीड़े-मकोड़े एक दूसरे सिद्धान्त से साँस लेते हैं। झिनगों के अगल-बगल रोशनदानों की तरह छोटे-छोटे छेद सब किसी ने देखे होंगे। इन छेदों से होकर इस जीव के भीतर एक मार्ग जाता है जो भ्रम में डालने वाली नलियों की एक भूल-भुलैया होता है और चक्कर काटने वाली हवा से भरा रहता है। पक्षियों के समान कीड़े-मकोड़े भी सन्निपातिक रूप से क्रियाशील रहते हैं।

अनेक जानवरों के यद्यपि गलफड़े नहीं होते, फिर भी वे पानी के अन्दर रह कर साँस लेते रहते हैं। वे यह क्रिया दो प्रकार से करते हैं या तो वे अपने नथुनों को किसी छोटे से टीले के ऊपर करके साँस ले लेते हैं या अपनी पूँछ के सिरे से साँस लेते हैं। पानी के गुबरीलों को यह क्रिया करते हुए गर्मी के दिनों

में किसी भी तालाब पर देखा जा सकता है। बहुधा खाद के पानी के कठौते में एक आध मोटा कोआ या घुन मिल जाता है, जो स्वयं तो लगभग एक इञ्च लम्बा होता है किन्तु उसकी बाल बराबर पतली "पूँछ" उसके आकार से छै गुना लम्बी होती है। इसे मूषक-पुच्छ कीट कहते हैं जो स्थानान्तरित होकर एक मक्खा बन जाता है। वह अपनी पोली पूँछ के द्वारा स्वच्छ वायु घसीट कर उसी गन्दगी में रहने का प्रबन्ध कर लेता है जिसे वह खाता है।

देखने वाली आँख के चमत्कार

आँखें दो काम करती हैं। वे प्रकाश और चित्रों को ग्रहण करती हैं। किसी भी प्रकार की सबसे पहिली आँखें केवल प्रकाश सुवेधी थीं; उनमें छितरे हुए प्रकाश पकड़ने वाले वैसे कोष थे जैसे कि एक-कोषीय कृमि और भिन्न-भिन्न कृमियों में होते हैं। जब जीव अधिक पेचीले बन गए तब ये कोष समूहों में इकट्ठे हो गए और अन्त में एक प्रकार के चित्र सम्भव हो सके।

यह सम्भव है कि एक घोंघे को कुछ वस्तुओं के धुँधले चित्र दिखाई दे सकते किन्तु उसी दशा में जब कि वे वस्तुयें बहुत ही पास होतीं। भिनगों के समान कीड़े-मकोड़ों के कोओं के सिर के प्रत्येक ओर सात या अधिक आँखें होती हैं, और ये भी धुँधले ही चित्र देख सकते हैं। तितली के समान एक पूर्ण कीट के बहुधा कई हज़ार आँखें होती हैं, जो दो बड़े समूहों में क्रम से स्थिर होती हैं। जो चित्र ऐसी आँखें ग्रहण करती हैं कदाचित् बहुत कुछ उन चित्रों के सदृश्य होते हैं जो जालीदार खिड़कियों से दिखलाई देते हैं।

मनुष्यों की अपेक्षा पक्षियों की दृष्टि अच्छी होती है—

रीढ़ वाले जानवरों की आँखों में भी बड़ा वैभिन्य होता है। प्रत्येक बात आँखों की शक्ति के केन्द्र-विन्दु पर आश्रित होती है। जिस प्रकार चित्र उतारने वाले कैमरे की तालें एक पेंच द्वारा घुमाई जाती हैं उसी तरह आँखों की तालों को पेशियों द्वारा आगे पीछे हटाना चाहिये। एक "काड" मछली अपनी आँखों को केन्द्रित कर सकती है, किन्तु एक 'श्वान' मछली किसी वस्तु को प्रायः छूकर ही उसके पास होने का सुख उठा सकती है।

समस्त जानवरों में मनुष्य का मस्तिष्क सबसे उत्तम होता है किन्तु उसकी आँखें सबसे बढ़िया नहीं होतीं। हम रंगों का आनन्द उठा सकते हैं, जब कि एक कुत्ता, ऐसा विश्वास किया जाता है, काले और सफ़ेद संसार में रहता है। किन्तु एक पक्षी की अपेक्षा हमारी दृष्टि कम तीव्र होती है। एक पक्षी की प्रत्येक आँख में हड्डी की पत्तर का एक छल्ला होता है, इसी की सहायता से वह दृष्टि को केन्द्रित करने की अद्भुद शक्ति का आनन्द उठाता है। यह ठीक एक केमरा के महा-प्राचीर-परदे के समान कार्य करता है और आवश्कतानुसार अधिक या कम प्रकाश को आने देता है। एक उक़ाब या गरुड़, उल्लू की आँख का हड्डी वाला छल्ला औसतन इतना बड़ा होता है जितनी कि गोली की एक डिबिया।

सिर पर आँखें—

आँखों का स्थान सिर पर होने पर बहुत कुछ बातें निर्भर हैं। मनुष्यों, बन्दरों और बिल्लियों को सुअरों और घोड़ों की अपेक्षा अधिक अच्छा दिखलाई देता है। जब दोनों आँखें सीधी सामने की ओर लक्ष्य करती हैं, तब उन्हें दोहरे ताल की दूरबीन का-सा

चित्र दिखलाई देता है। केवल एक ओर से देखने से उन्हें एक धुँधला या आंशिक चित्र दिखलाई देता है। किन्तु साथ ही ऐसी आँखें पीछे से या बगल से आने वाले खतरे का आभास पा जाती हैं। यह बात घोड़े और हिरन के समान जानवर के लिए बड़े महत्व की होती है।

पानी वाले जानवरों की आँखें बहुधा उनके सिर के ऊपर होती हैं। घड़ियाल, दरियाई-गैंडा या मेंढक सारा शरीर पानी में डुबाये रख सकते हैं, और केवल अपनी आँखों को पानी के ऊपर रहने देते हैं और देखकर निश्चित करते हैं कि धरती पर निकलना सुरक्षित है या पानी के भीतर ही रहना अधिक अच्छा है।

स्वतन्त्र रूप से काम करने वाली आँखें—

मछलियों और गिरगिटान के समान कुछ सरीसृपों में आँखें स्वतन्त्र रूप से काम करती हैं। गहरे पानी में रहने वाली कुछ मछलियों और घोंघों, दस पैर के समुद्री केकड़े, झींगा मछलियाँ तथा अन्य केकड़ों के समान समस्त जीवों की आँखें केवल इस प्रकार की बनी ही नहीं होतीं कि वे स्वतन्त्र रूप से काम कर सकें, बल्कि वे एक लम्बी डण्डी के सिरे पर लगी हुई रहती हैं, जिसका प्रयोग न किये जाने पर नली में लपेट लिया जा सकता है और सिकोड़ कर अलग हटा दिया जा सकता है।

तीन आँखों वाला जानवर—

सब को आँखों की फ़िक्र करनी पड़ती है। हमारी आँखों के दो पलकें होती हैं। बहुत से स्तनपायियों और सारी चिड़ियों के तीन पलकें होती हैं, तीसरी पलक आँख के आर-पार भीतर के [illegible]नों से बाहर की ओर चलती रहती है। ये पलकें अश्रु-ग्रन्थियों

के साथ मिल कर, यदि वे हुईं तो, आँख को धूल मिट्टी से साफ़ रखती हैं।

थोड़े से अमेरुदण्डीय जीवों में, जैसे कि राज-केकड़े में एक तीसरी आँख होती है, जो उनके सिर की चोटी पर होती है। न्यूज़ीलैण्ड में एक सरीसृप होता है जो बहुत ही कम मिलता है और जिसे टुआटेरा' छिपकली कहते हैं। इसके तीसरी आँख की निशानी अब तक बाक़ी है, जो उसे अपने पूर्व ऐतिहासिक काल के पूर्वजों से प्राप्त हुई है, किन्तु वह अब वास्तविक काम की नहीं रही है। बहुत ही थोड़े जीवों ने, जैसे कि केन्टुकी की गुफा में रहने वाली मछलियों ने घोर अन्धकार में रहने के कारण अपनी आँखें गँवा दी हैं और उनकी देखने की शक्ति जाती रही है।

कान और सुनना

कान अपने सरलतम रूप में कस कर तनी हुई एक झिल्ली है जो एक बक्स पर मढ़ी हुई है। यही बक्स प्रतिध्वनि उत्पन्न करने वाले यंत्र का काम करता है। आस-पास की हवा के स्पन्दन प्रतिक्रिया-स्वरूप कर्णोदय में कँपकँपी उत्पन्न करते हैं, और इसी को संज्ञा-वाहिनो द्वारा मस्तिष्क के ग्रहण करने का नाम सुनना है। अतएव श्रवण करने और स्पर्श करने की क्रिया दोनों एक ही हैं।

टाँगों के द्वारा सुनना—

'ओसीफोन' नामक मशीन के द्वारा वे लोग जिनके कर्णोदय नष्ट हो गये हैं, अपने गले की हड्डियों या कोहनियों के ज़रिये से

सुन सकते हैं। शब्द से जो स्पन्दन उत्पन्न होते हैं वे मस्तिष्क तक पहुँचाये जाते हैं और परिणाम होता है एक प्रकार की सुनने की क्रिया ! साँपों, मछलियों, केकड़ों और अनेक कीड़े-मकोड़ों के यद्यपि वास्तविक कान नहीं होते, अतः वे बहुत कुछ इसी प्रकार सुनते हैं।

बहुत से जानवर जो अपने कण्ठ से आवाज़ करने या गाने के योग्य होते हैं, सुन सकते हैं। एक मधु-मक्खी या एक मच्छर कदाचित् स्वयं अपनी भनभनाहट नहीं सुन सकते, क्योंकि वह हवा में होकर प्रगति करते रहते हैं। किन्तु एक झींगुर की चिरचिराहट उसके जीवन में एक महत्व की बात होती है, वह उसका प्रेम-गीत होता है। झींगुर एक सरल कर्णोदय की सहायता से, जो बजाय उसके सिर के उसकी जंघाओं या अगली टाँगों मे होता है, अपने साथी की आवाज़ सुन सकता है। केकड़े की आकृति की मछली और 'पिस्टॉल प्रॉन''के सदृश्य कुछ छिलकेदार मछलियाँ ज़ोर की आवाज़ कर सकती हैं, और यह विश्वास किया जाता है कि उक्त आवाज़ें सुनने वाले बालों के कर्णोदयों के द्वारा सुनी जा सकती हैं, जो टाँगों के चारों ओर लगे होते हैं और केन्द्रीय-स्नायु मंडल से सम्बन्धित होने के कारण मस्तिष्क मे सन्देश ले जाते हैं।

मेढकों और छिपकलियों के कान होते हैं, क्योंकि वे बहुधा बोलने वाले जीव होते हैं, किन्तु हमारे मापदण्ड से साँप बहिरे होते हैं। सँपेरे के खेल के साथ जो बाजा नित्य बजता है वह केवल एक पेशे वाले का छल है। मछली की तथाकथित कान की हड्डियाँ मुख्यतः उसका संतुलन बनाये रखने के काम आती हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे कि हमारे कानों की 'कस्टैशियन ट्यूब' हुई अर्धगोलाकार वायु प्रणालियाँ हमारा संतुलन बनाये

रखने में सहायक होती हैं। इन वायु-प्रणालियों के दोष सीधा चलने में बाधा उपस्थित करते हैं और साइकिल पर चलना तो और भी कठिन कर देते हैं।

कानों की दूरी--

कानों की परिवृद्धि पक्षियों में ख़ूब होती है, विशेषतः रात में उड़ने वाले उल्लुओं में, किन्तु यह परिवृद्धि स्तनपायियों में अपने उच्चतम शिखर पर पहुँचती है। अन्य पशुओं से हमारी बुद्धि पर्याप्त बढ़ कर होने पर भी, बहुत से स्तनपायियों की तुलना में हमारी श्रवण-शक्ति दुर्बल है। जिन आवाज़ों को ऊँची या नीची होने के कारण हम सुन नहीं सकते, उन्हें एक कुत्ता ग्रहण कर लेता है।

कान का बाहरी भाग, जो एक ध्वनि-पटरे का काम करता है, एक जीवधारी की श्रवण-शक्ति का उत्तम इङ्गित होता है। वह अपनी उच्चतम अवस्था को पहुँच जाता है—कभी-कभी एक गज की दूरी पर—जैसे कि हाथी में, और हिरन और खरगोश में भी वह एक पर्याप्त ऊँचे मापदण्ड तक पहुँच जाता है। यह बात भी बड़ी विचित्र है कि जिराफ़ की श्रवण शक्ति काफ़ी उन्नत होती है, यद्यपि वह बिना वाणी-तन्तु वाला और परिणामतः एक चुप जीव होता है। सील और ह्वेल मछलियों में श्रवणशक्ति कम होते-होते एक विलीन विन्दु तक पहुँच गई है। झींगा मछली में कान समतुलन का केवल एक अंग होता है। झींगा के चारों ओर आठ छोटे-छोटे थैले लगे रहते हैं। इनमें ऐसा तरल पदार्थ होता है जिसमें चूने के कण तैरते रहते हैं। जब चूने के कण थैलियों की बग़लों से टकराते हैं तब झींगा को सूचना मिल जाती है कि वह औंधी होकर तैर रही है और तब वह स्वतः अपने को ठीक कर लेती है।

———

मस्तिष्क और भावना

यह बात अक्षरशः सत्य है कि दिमाग़ सदर दफ़्तर होता है। शरीर के प्रत्येक अंग से संज्ञा-वाहिनी उसके पास सन्देश ले जाती हैं और यदि कोई स्नायु काट दी जाय तो कोई सन्देश नहीं आ सकता। शरीर के किसी अंग में चेतनाशून्य या सुन्न करने वाली औषधि के लगा देने से उस स्थान की संज्ञावाहिनी, जो शरीर की तारवर्क्री होती है, बेकाम हो जाती है। किन्तु आमतौर से चेतना-शून्य करने वाली एक औषधि दिमाग़ ही को बन्द कर देती है, जो सन्देश ग्रहण करने का स्टेशन होता है।

एक मस्तिष्क भी उसी पदार्थ का बना होता है जिससे कि स्नायु बने होते हैं। किन्तु वह भूरा पदार्थ, जिसे समझा जाता है कि सारी विचारशक्ति के लिये ज़िम्मेदार है, सारे दिमाग़ पर एक विभिन्न गहराई के अनुसार एक स्तर में फैला रहता है। दिमाग़ का एक व्यौरेवार मानचित्र बनाना असम्भव है। किन्तु वह बात सर्व-स्वीकृत है कि सोचने की शक्ति बहुत कुछ अग्र-भाग में केन्द्रित होती है, दृष्टि पिछले हिस्से में होती है और मस्तिष्क का पृष्ठ भाग शरीर के समतुलन को वश में रखता है।

अप्रधान-मस्तिष्क कूल्हों में केन्द्रित होता है--

मानव मस्तिष्क की तुलना में संसार का कोई भी दूसरा अंग अधिक पेचीला नहीं होता। एक औसत मनुष्य का दिमाग़ तौल में सवा सेर का होता है, और यह उसके सारे वज़न का मोटे तौर से साठवाँ हिस्सा होता है। एक हाथी का दिमाग़ तौल में साढ़े सात सेर का हो सकता है किन्तु यह उसके सारे शरीर का १/६०० वाँ भाग होता है।

ऐसा तुच्छ दिमाग़ भी सरीसृपों के दिमाग़ों से बहुत कुछ बढ़ा-चढ़ा होता है। 'डिनासौर' (एक वृहताकार रेंगने वाला जानवर) के नष्ट होकर विलीन होनेका बहुत कुछ कारण उसका सीमित मन था। उदाहरणार्थ 'स्टेगोसौर' का दिमाग हाथी के दिमाग़ के अनुपात में अत्यन्त छोटा था। वह इतना छोटा था कि वास्तविक दिमाग़ से कई गुना बड़ा एक अप्रधान-दिमाग़ उसके कूल्हों में केन्द्रित था जो उसकी पिछली टाँगों की गति को संचालित करता था और उसकी बड़ी पूँछ को हिलाता था।

अमेरुदण्डीय जीवों की भी ऐसी ही दशा है। उदाहरणार्थ केकड़ों और मक्खियों को ले लीजिये, इनके वास्तविक मस्तिष्क तो बड़े नन्हें होते हैं, किन्तु इनके "उदर मस्तिष्क" इनकी टाँगों के जोड़ पर केन्द्रित होते हैं। झींगा मछली में या समुद्री वायु-पुष्पों में कोई ऐसी वस्तु नहीं होती जिसे मस्तिष्क कहा जा सके—उनके तो केवल स्नायुओं का एक उलझा हुआ-सा गुच्छा होता है और कोई केन्द्रीय स्टेशन नहीं होता।

इसके यह अनुभव होगा कि कीड़े-मकोड़ों या उन्हीं के समान जीवों की तुलना करना कभी-कभी बड़ा भ्रान्तिजनक होता है। एक स्तनपायी की अपेक्षा एक यंत्र से किसी कीड़े की तुलना करना अधिक उचित है। यदि उनका अंग-भंग भी हो जाता है, तो भी वे मशीन की तरह अपने काम को जारी रखने का प्रयत्न करते रहते हैं मानों वे अपनी साधारण परिस्थिति में ही हैं। अमेरुदण्डियों के प्रति पीड़ा शब्द के प्रयोग करने का कोई अर्थ नहीं होता और सम्भवतः यही हाल निम्नतम कोटि के रीढ़ वाले अनेक जानवरों का भी है।

जानवरों की बुद्धि--

यद्यपि चींटियाँ, मधु-मक्खियाँ और बर्रें अपना घर बनाती हैं, कुएँ बनाती हैं, बाग लगाती हैं, गायें पालती हैं और उनका

एक विशेष प्रबन्ध होता है, तो भी वे मनुष्य के समान बुद्धि नहीं रखतीं। उन्हें जो पाठ जन्म ही से मिलता है उससे आगे वे नहीं जा सकतीं और न कोई नया काम कर सकती हैं। इनमें से जो जिस काम के लिए बनाई गई हैं उसके अतिरिक्त वह दूसरा काम नहीं कर सकतीं। वे बिलकुल मशीन की तरह होती हैं। अगर एक बर्र का पिछला हिस्सा काट दिया जाय तो भी वह अपने सामने रखी हुई खाद्य-सामग्री को उस समय तक खाती रहेगी जब तक वह मृत्यु के हवाले न हो जाये।

यह सिद्ध हो चुका है कि मेरुदण्डीय जानवरों का मस्तिष्क अमेरुदण्डीय जानवरों की अपेक्षा उत्तमतर होता है। साथ ही यह भी प्रमाणित कर दिया गया है कि इनमें भी बुद्धि उनके मस्तिष्क की उस बड़ाई और छुटाई पर निर्भर है जो उनके शरीर के अनुपात के अनुसार हो। कोरी बड़ाई-छोटाई से बुद्धि की माप ठीक-ठीक नहीं होती। वैज्ञानिकों ने यह भी मालूम कर लिया है कि मस्तिष्क का भारी होना ही पर्याप्त नहीं है किन्तु उसका वर्ग और बनावट भी काफ़ी प्रभाव रखते हैं। मस्तिष्क जितना साफ़ और चिकना होगा उसमें उतनी ही बुद्धि कम होगी। उसमें रेखाओं का होना आवश्यक है। मस्तिष्क में जितनी अधिक रेखाएँ होंगी उतना ही उसका वर्ग बढ़ जायेगा और बुद्धि पर भी पर्याप्त प्रभाव पड़ेगा। यही कारण है कि यद्यपि कुछ जानवरों का मस्तिष्क मनुष्य से बड़ा है, जैसे ह्वेल का, तो भी वे मनुष्य से बुद्धि में कम हैं।

जानवर प्रायः अपनी स्वयम्भू प्रवृत्ति के अनुसार कार्य करते हैं किन्तु देखा गया है कि कुछ जानवर सोच समझ कर अपनी बुद्धि से भी किसी काम को पूरा करते हैं। निश्चित समय से और नियत स्थान पर जानवरों को खाना मिलने से वे ठीक पर उक्त स्थान पर पहुँच जाते हैं। इसके एक नहीं अनेक

अनुभव विद्वानों ने किये हैं। उनके दिए उदाहरणों से पता चलता है कि पशु-पक्षियों में भी विचारशक्ति मौजूद है और वे कभी सोच-समझ कर भी काम करते हैं।

जानवरों में बदला लेने की भावना भी इस बात का प्रमाण है कि उनमें स्मरण रखने और सोचने की शक्ति होती है। एक दर्जी से हाथी के बदला लेने की कहानी तो बहुत लोगों ने अपने स्कूल-जीवन में पढ़ी होगी कि कैसे एक हाथी ने एक दर्जी की दुकान पर गँदला पानी छिड़क दिया था, क्योंकि उस दर्जी ने उसकी सूँड़ में सुई चुभो दी थी। हमारे मुहाल में चेता नामक एक गड़रिया रहा करता था। एक बार उसने एक गाय को लाठियों से बहुत मारा था। एक दिन मौक़ा पाकर उस गाय ने चेता को गिरा दिया और गिराकर अपने सींगों से खूब मारा।

दूसरा उदाहरण एक हाथी के बदला लेने का इस प्रकार है :—

"धुबरी राज्य के सलकेचा नामक स्थान में कुछ वर्ष पूर्व खीला सूत्रधार ने एक हाथी को, जिसका वह महावत था, पीटा था। कुछ दिन बाद वह एक दूसरे मालिक के मातहत एक नए हाथी का महावत बनाया गया।

"एक दिन जब कि पुराने हाथी का महावत और खीला अपने-अपने हाथियों पर काम पर से लौट रहे थे, तो रास्ते में एक स्थान पर रुक कर आपस में बातें करने लगे और चिलम पीने लगे।

"जिस समय कि एक महावत दूसरे को चिलम दे रहा था तब उस हाथी ने जो पहिले खीला के आधीन था, यकायक खीला

को अपनी सूँड़ से दूसरे हाथी की पीठ पर से घसीट लिया और अपने महावत के रोकने पर भी खीला को कुचल कर मार डाला।"

दो चीजों को अलग-अलग जान लेने की योग्यता भी जानवरों में बुद्धि की उपस्थिति का प्रमाण देती है। इसके भी अनेक उदाहरण मिलते हैं, जैसे मधु-मक्खियों का भिन्न-भिन्न रङ्गों को पहिचानना आदि अक्सर देखा गया है। जानवरों की स्मरण शक्ति के तो अनेक उदाहरण पुस्तकों में भरे पड़े हैं, जिनमें इन बातों का जिक्र है कि वे बहुत समय तक कुछ बातें याद रखते हैं। इसी-स्मरण शक्ति के द्वारा विवेचना करने की शक्ति की उत्पत्ति होती है।

मेरी एक गाय थी जिसे मैंने अपने एक मित्र को दे दिया था। और वे उसे अपने गाँव ले गये थे, जो कानपुर शहर से पन्द्रह-बीस मील दूर था। तीन वर्ष के पश्चात् एक दिन वह गाय मेरे दर्वाजे पर आकर रँभाने लगी और आस-पास ही कुछ देर तक घूमती रही। वह इतनी दुर्बल हो गई थी कि हम लोगों ने उसे शुरू में पहिचाना ही नहीं, कदाचित् मेरे मित्र ने उसे ठीक तरह से नहीं रखा था। जब हम लोगों ने उसे दो-तीन दिन बाद पहिचाना तो उसे फूल बाग में बँधवा दिया। इन दो-तीन दिनों में वह कहीं गई नहीं और हम लोगों के घर के आमने-सामने ही घूमती रही। वह हमारे घर की ही बछिया थी। हमारे यहाँ शुरू से पली थी और यहीं उसके दो बार बच्चे भी हुए थे। उसके पाँच थन थे और वह पाँचों से दूध देती थी। तीन वर्ष के पश्चात् भी वह अपना पुराना घर नहीं भूली और स्वयं बिना किसी की मदद के अपने घर आ गई और हम लोगों के पहिचान लेने पर बड़ी प्रसन्न भी मालूम देती थी। यह जानवरों की स्मरण-का एक उदाहरण था।

शिक्षा से बन्दर और कुत्ते ऐसी अनेक बातें सीख जाते हैं जो वे स्वभावतः नहीं करते। जैसे एक कुत्ते का जलती हुई लालटेन लेकर चलना और बन्दरों का पंखा खींचना आदि बातें ऐसी हैं जो वे अपनी स्वयम्भू प्रवृत्ति से नहीं करते किन्तु ये हैं उनकी शिक्षा के प्रभाव। बर्मा में हाथी लट्ठे ढोने का काम करते हैं, जो उन्हें सिखाया जाता है। ये सारी बातें जानवरों की स्मरण-शक्ति और उनमें बुद्धि के उपस्थित होने के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

चींटियों और शहद की मक्खियों में अपने घोंसलों के मार्ग स्मरण रखने की शक्ति तो होती है किन्तु दूर छोड़ दिये जाने पर उन्हें अपने बिल का मार्ग ढूँढ़ने में बुद्धि और अनुभव से काम लेना पड़ता है। उनमें अपने साथियों को विशेष बातों की ख़बर देने की प्रवृत्ति भी पाई जाती है। नक़ल उतारने की बात तो तोता-मैना आदि पक्षियों में प्रायः सभी को मालूम है और नक़ल तभी उतर सकती है जब किसी चीज़ को समझ लिया जाय। बन्दरों के नक़ल उतारने के उदाहरण तो अनेक हैं। इन सबसे प्रमाणित होता है कि जानवरों में थोड़ी-सी समझ तो अवश्य है किन्तु वे मनुष्यों की तरह गम्भीर प्रश्नों को सुलझाने में असमर्थ होते हैं। अतः उनमें बुद्धि का होना तो प्रमाणित है, प्रश्न मात्रा की कमी और बेशी का रह जाता है।

जानवरों में दैत्य

विकृत और विलक्षण तथा दैत्याकार प्राणी पूर्व-पोषणिका ग्रन्थि की अति-क्रिया से जीव जाति की प्रत्येक शाखा में उत्पन्न होते हैं। पृथ्वी पर जीवन के इतिहास में जीवधारियों का प्रत्येक मुख्य समूह एक या अधिक उच्च शिखर तक पहुँचा है। और

इस प्रयत्न में उनके कुछ सदस्य परिवृद्धि की पराकाष्ठा तक पहुँच गए हैं। आज उष्ण-रक्त स्तनपायी, जो अपने बच्चे जीवित उत्पन्न करते हैं, और उन्हें दूध पिला कर पालते हैं, मैदान में सबसे आगे हैं।

संसार में सबसे बड़े स्तनपायी--

आजकल के पृथ्वी पर रहने वाले स्तनपायियों में हाथी ही सबसे बड़ा होता है। इसकी ऊँचाई १२ फुट से अधिक नहीं होती। आगे चलकर इसके अधिक बढ़ने में सन्देह है। जिस हाथी का वज़न छः टन से अधिक होगा उसकी टाँगों को इतना मोटा होना पड़ेगा कि उसका चलना लगभग असम्भव हो जायगा। प्राचीनकाल का दैत्याकार गैंडा बहुत पतला होता था किन्तु अब वह नेस्तनाबूद हो गया है। १८ फुट लम्बा जिराफ़ जो आज भी पाया जाता है, बनावट में बड़ा हल्का होता है। पानी में वज़न की कोई विशेष गणना नहीं होती। तरल मार्ग अपेक्षाकृत बोझ को नगण्य बना देता है और इसीलिये १०० फुट से अधिक लम्बी और तौल में ३० हाथियों के बराबर गन्धक-ह्वेल मछली सरलता से चल-फिर सकती है। लुप्त हो जाने वाले कीड़े-मकोड़ों में से भी कुछ ऐसे थे जो लम्बाई में १०० फुट तक पहुँच गये थे किन्तु उनका शरीर हाथी से बड़ा कभी नहीं हुआ। इनमें से बहुत से सम्भवतः पानी के जीव थे।

उड़ने वाले भारी-भरकम जीव--

ह्वेल मछली की तरह और दूसरे भी तैरने वाले जानवर होते हैं जिनका आकार बहुत बड़ा होता है। शार्क मछली ५० फुट लम्बी होती है, यह हाथी-सील से १० फुट और बड़े से बड़े ९ से २० फुट तथा दैत्याकार दो-शाखा मछली से ४० फुट

से अधिक लम्बी होती है। ये समस्त जीव फेफड़ों या गलफड़ों के द्वारा साँस लेते हैं, क्योंकि वृहताकार वृद्धि के लिये इनका होना आवश्यक है।

कुछ उड़ने वाले जीव भी एक प्रभावशाली आकार प्राप्त कर लेते हैं, किन्तु इस तथ्य से कि वे उड़ते हैं, उनकी लम्बाई-चौड़ाई सीमित हो जाती है। लगभग पाँच सेर का शारीरिक बोझ ही हवा में पर्याप्त ऊँचाई तक उड़ सकता है; इससे अधिक बोझ उड़ने में बाधक होता है।

चूहों के बराबर बड़े कीड़े--

कीड़े नलियों की एक पेंचीली पद्धति के साथ साँस लेते हैं, और उन्होंने जो बड़े से बड़ा आकार प्राप्त किया है यदि कोई कीड़ा उसे पार कर जाये, तो सारी रचना ढह जायेगी। अफ्रीका और दक्षिणी अफ्रीका के गुबरीले दैत्याकार कीड़े होते हैं, वे लगभग चूहों के बराबर बड़े होते हैं। भारतीय 'एटलस' पतिंगा पंख फैलाने पर एक फुट का होता है, वह प्राचीनकाल की अजगर मक्खी से केवल ६ इञ्च छोटा होता है।

केकड़ों और झींगाओं के समान छिलके या ढक्कनदार जीव गलफड़ों से साँस लेते हैं और कीड़ों की अपेक्षा उनके ढक्कन या सिपियाँ अधिक कड़ी होती हैं, किन्तु इन सिपियों को वे निश्चित समय पर छोड़ देते हैं, और इस क्रिया में जानवर को जो परिश्रम करना पड़ता है उससे उसका फैलाव सीमित हो जाता है। 'कोयला-काल' का दैत्याकार समुद्री बिच्छू लम्बाई में नौ फुट का होता था, किन्तु वर्तमानकाल का सबसे बड़ा जीवित केकड़ा, अर्थात् जापान का मकड़ी-केकड़ा एक सिरे से दूसरे सिरे तक ९ फुट तक फैल सकता है परन्तु इसका शरीर एक मनुष्य के सिर से बड़ा नहीं होता।

मनों वज़न के घोंघे--

मीठे पानी की अपेक्षा समुद्र का जल अपने घनत्व के कारण वज़न को घटाने में अधिक प्रभावशाली होता है; अतएव हमें समुद्र में ऐसे घोंघे मिलते हैं जिनकी सिप्पियाँ दो फुट लम्बी होती हैं। उदाहरणार्थ अमरीका के तकुए के अनुसार पतले घोंघे हैं—ये धरती या नदी के किसी भी घोंघे से चौगुने लम्बे होते हैं। अनुद्योगी जीवन व्यतीत करने के कारण घोंघा मछली और भी बहुत बड़ी हो सकती है, और आस्ट्रेलिया में ऐसे 'क्लैम्स' होते हैं जिनकी सिप्पी एक गज़ से भी अधिक लम्बी होती है और जिनका वज़न कई मन होता है।

अपने अंगों की सहायता के लिये जितना छोटा कंकाल या उसी के समान रचना, एक जानवर की होती है उतनी ही अधिक रुकावटें उसके विस्तार में होती हैं। झींगा मछली बहुत कम एक गज़ से अधिक बड़ी हो पाती हैं, और गहरे समुद्र में रहने वाले थोड़े ही से ऐसे समुद्री फूल होते हैं जो लम्बाई में ६ फुट तक पहुँचते हैं, और उनकी स्पर्श-भुजायें दो गज़ तक का व्यास फैलाती है। सबसे बड़े एककोषीय जीव जो मध्य-समुद्र में उतराते हैं, मनुष्य की उँगलियों के नाख़ून के बराबर होते हैं।

जंतुओं में युद्ध

मनुष्य के अतिरिक्त ऐसा कोई जानवर नहीं है जिसने लड़ाई में प्रयोग करने के लिये बहती हुई आग और विषैली गैस को पूर्णता तक पहुँचा दिया हो। अन्य जानवर तो अपने प्राचीन अस्त्र—दाँतों और पंजों ही पर मुख्यतः भरोसा करते हैं। किन्तु सभ्यता को ध्वंस करने वाले जो ढंग स्वयं मनुष्य ने ढूँढ़ निकाले

हैं उसके बहुत पहिले कुछ जानवरों ने आधुनिक भयंकरता के इन स्वरूपों को सोच लिया था ।

ज़हरीली गैस द्वारा आक्रमण—

कुछ जानवर एक प्रकार की ज़हरीली गैस का प्रयोग करते हैं किन्तु यह बात निश्चयात्मक रूप से नहीं कही जा सकती है कि उनकी शक्तिशाली गन्ध, जो हमें अति अप्रिय मालूम देती है स्वयं उनकी जाति वालों को आकर्षक न मालूम देती हो। केनाड़ा के स्कुङ्क (यह एक माँसाहारी जीव आकार में बिल्ली के बराबर होता है और उस के शरीर पर काले और सफ़ेद दाग होते हैं, यह अपनी रक्षा के लिये पीछे से बड़ा सख्त बदबू निकालता है जिसे कोई सहन नहीं कर सकता) की दुर्गन्ध बड़ी ही अप्रिय और मिन्ना देने वाली होती है। मालूम ऐसा देता है कि उसे अपनी भयंकर शक्ति का ज्ञान होता है, और यद्यपि वह एक बिल्ली से बड़ा नहीं होता, फिर भी वह अपने से बड़े जानवरों का मार्ग रोककर खड़ा हो जाता है और उन्हें उस ओर से निकलने नहीं देता। उसकी पूँछ के नीचे की ग्रन्थियों से निकला हुआ तरल पदार्थ यदि किसी मनुष्य पर पड़ जाता है तो सिवा नये वस्त्र बदलने के मनुष्य के पास कोई दूसरा उपाय नहीं रहता।

दीमक—

दीमकों या सफ़ेद चींटियों ने एक भयंकर अस्त्र निकाल लिया है। धरती के भीतर दीमक बड़े-बड़े नगर बनाते हैं, जिनकी रक्षा विशेष प्रकार के दीमक करते हैं, जिन्हें सैनिक कहा जाता है। जब कोई शत्रु दिखलाई पड़ता है तब ये दीमक आगे लपकते हैं और आक्रमणकारी पर एक ऐसा अम्ल-रस या तेज़ाब छिड़क

देते हैं जो हवा से सम्पर्क होने पर ठोस बन जाता है। यदि किसी बड़े जानवर पर ऐसा पदार्थ छिड़का जाता है तो उसे केवल एक अरुचिकर चिपचिपाहट का भान होता है, किन्तु एक कीडे पर उक्त पदार्थ के पड़ने पर वह अक्षरशः पथरा जाता है और उसी पकार बिलकुल निकम्मा हो जाता है जैसा कि एक मनुष्य उस समय बेकार हो जाता है जब कि उसके ऊपर लेई या गोंद की एक मोटी तह चढ़ा दी जाय।

दो-शाखा मछली के धुएँ का परदा

देहात में इधर-उधर घूमने पर यदि अकस्मात् कोई पत्थर का टुकड़ा उलट दिया जाता है, तो कभी-कभी धीमी-धीमी फटा-फट की आवाजें सुनकर और उनके पीछे कडुये धुएँ के नन्हें गुच्छे देखकर बड़ा आश्चर्य होता है। यह गोलावारी करने वाले पतिंगों का बाँध होता है जिन्हें छः बुन्दिया कहते हैं, क्योंकि उनके सख्त परों पर छः पीले गोल निशान होते हैं। डर जाने पर छः बुन्दिया तीव्रता से उड़ जाने वाले तरल पदार्थ की एक बूँद निकालता है, जो सुनाई देने वाले धड़ाके के साथ फटती है– यह धड़ाका हमारे लिये तो बिलकुल नगण्य होता है किन्तु एक दूसरे पतिंगे को ऐसा चौंका देता है कि वह उलट कर चित्त गिर पड़ता है।

दो-शाखा मछली अष्टपद और उन्हीं के समान अन्य घोंघे डर जाने पर बड़ी मात्राओं में अपने शरीर से ऐसी स्याही निकाल कर बाहर फेंकते हैं जो पानी को ऐसा मेघाच्छन (गँदला) कर देती है कि इस कृत्रिम कोहरे की आड़ में ये जीव भाग कर अपनी जान बचा लेते हैं। इस स्याही को सीपिया कहते हैं। यह सीपिया या स्याही मनुष्य के भी काम आती है, विशेष कर ७०ँ के काम में। साधारण समुद्र-कीट, पौधा-कीट, समुद्री

खरगोश और विभिन्न प्रकार के चट्टानी घोंघे भी इसी प्रकार के उपायों से काम लेते हैं। किन्तु वे काली भूरी स्याही के स्थान पर बैंजनी स्याही से अपना पीछा करने वालों को धोखा देते हैं।

शत्रुओं को प्रकाश से चकाचौंध करना—

महासागर के गहरे गढ़े के अन्धकार में स्याही के द्वारा बच कर भाग निकलने का कोई प्रभाव नहीं हो सकता। अतः गहरे समुद्रों की रहने वाली दो-शाखा मछली अपने शत्रुओं को काले धुएँ से अन्धा नहीं करतीं किन्तु प्रकाश से उन्हें चकाचौंध करके खतरे से भाग निकलती हैं। इस प्रकार की दो-शाखा मछलियाँ और गहरे समुद्र की विभिन्न झींगाएँ नीले हरे चमकने वाले तरल पदार्थ के घूमते हुए बादलों की पिचकारी छोड़ती हैं। इससे उनके शत्रु वैसे ही पूर्णतया चकाचौंध हो जाते हैं जैसे कि बिजली का टार्च अँधेरे में एक चूहे या खरगोश को चकाचौंध कर देता है।

पशु-संग्राम की एक दूसरी नक़ल जो हमने की है वह है पानी की बन्दूक़। पूर्वी देशों की झीलों और नदियों में रहने वाली एक छोटी मछली को तीरन्दाज़ कहते हैं। नदी किनारे के घोंघों और घास पर बैठे हुये कीड़ों और पतिंगों पर यह इतने वेग से पानी की धार या पिचकारी छोड़ती है कि ये उलट कर अपने स्थान से गिर पड़ते हैं और पानी में आते ही यह उन्हें खा जाती है। इस तीरन्दाज़ का मुँह एक लम्बे थूथुन के रूप में आगे की ओर बढ़ा रहता है। इसी को देखकर निश्चय हीं लोगों ने पानी की बन्दूक़ का आविष्कार किया होगा, जिसके द्वारा प्रकृति-प्रेमी भन-भन करने वाली चिड़ियों और बड़ी-बड़ी तितिलियों को मारते हैं जिससे उनका अंगभंग नहीं होता।

हाथ और पैर

जिस प्रकार कुछ जानकार लोग आदमी का हाथ देखकर यह बता सकते हैं कि वह क्या काम करता है, आया वह मजदूर है या कलाकार, उसी तरह शरीर व्यवच्छेदक भी जानवरों की गतिविधि को जान जाता है, क्योंकि हाथ एक जीवधारी के जीवन की गतिविधि की कुञ्जी होते हैं।

तीस उँगलियाँ—

प्रथम हाथों की आवृति लाखों वर्ष पहले उस समय हुई थी जब कि मछलियों में सुफनों की परिवृद्धि हुई थी। एक सुफना केवल एक हाथ होता है किन्तु उसमें १० से लेकर ३० तक उँगलियाँ होती हैं जिन्हें किरणें कहते हैं। जब मछलियाँ पानी से निकल बाहर रेंग गईं तब उन्हें इतनी उँगलियों की आवश्यकता नहीं रही। फिर तो ५ या इससे भी कम से उतना ही काम हो जाने लगा।

मेंढक, गोह और सरीसृप सब के चार या पाँच उँगलियाँ होती हैं। समुद्री कछुए के हिलाने वाले अंग में पाँच उँगलियाँ ढकी रहती हैं। जब चिड़ियों के पंख निकले और उन्होंने उनका प्रयोग उड़ने में किया तब उँगलियाँ परित्याग कर दी गईं। आज संसार का केवल एकमात्र पक्षी ब्रेजिल का होटजीन ठीक तरह से उड़ना सीखने के पूर्व अपने प्रारम्भिक जीवन में दो उँगलियाँ रखता है जिनकी सहायता से वह पेड़ों पर चढ़ सकता है।

चढ़ने में सहायता देने वाली कटिया के रूप में हाथ—

स्तनपायियों ने सदा अपने हाथों और पैरों की उँगलियों पर भरोसा किया है, और हाथों की उँगलियों में आश्चर्यजनक

सुधार भी हो गये हैं। बन्दरों तक ने उनका प्रयोग करने के बीसों विभिन्न ढंग मालूम कर लिये हैं। उनमें से बहुतों ने हमारे सदृश्य ही चार उँगलियाँ और एक अँगूठा रख छोड़ा है। किन्तु मकड़ी, बन्दर और औरंग-ऊटङ्ग चढ़ने में सहायता पहुँचाने वाले कटिया के रूप ही में अपने हाथों का अधिक प्रयोग करते हैं, अतः उनका अँगूठा घट गया है या विलीन भी हो गया है। मेडेगास्कर का "ऐ-ऐ" नामक लीमर बन्दर बाँस के डण्ठलों में से कोये बीन-बीन कर निर्बाह करता है। यह क्रिया करने में मकड़ी की टाँगों के समान उँगलियों से काम लेना पड़ता है। और उसकी तीसरी उँगली जिसे चुनने का अधिकतम काम करना पड़ता है, एक तार के टुकड़े की तरह पतली होती है।

चढ़ने वाले औजारों में हाथ ही सबसे उत्तम होते हैं और कुछ लीमर बन्दरों ने उँगलियों और हथेली पर मोटी-मोटी गद्दियों की परिवृद्धि करके अपने हाथों में उन्नति कर ली है। पेड़ों पर चढ़ने वाले मेंढकों और घरेलू छिपकलियों के ऐसी चिपकने वाली गद्दियाँ होती हैं कि वे खिड़की के शीशों और कमरों की छतों (सीलिङ्ग) पर चल सकती हैं। अफ्रीका का एक लीमर बन्दर चढ़ने के पहले अपनी गद्दियों को चाट कर गीला कर लेता है और इस प्रकार वे अधिक उपयोगी हो जाती हैं।

चलने के लिये हाथ—

बिल्ली की नसल ने उँगलियों के नाख़ून इतने मजबूत बना लिये हैं कि वे माँस के फाड़ डालने के लिये पर्याप्त होते हैं। रीछ के पंजे चार इञ्च लम्बे तक हो सकते हैं और एक पेड़ की कठोरतम छाल को चीर सकते हैं। चींटी-खोरा इससे भी आगे बढ़ गया है। उसके हाथों की सारी शक्ति बीच की दो उँगलियों के

नाखूनों में निर्विष्ट हो गई है। उसके ये पाँच इञ्च लम्बे अङ्ग मिट्टी के बडे-बड़े धुस्सों को खोद सकते हैं।

समस्त चरने वाले और घास-पात खाने वाले जानवर जिन्हें अपने भोजन एकत्रित करने के लिये अपने ओठों और थूथुनों पर भरोसा करना पड़ता है, अपने हाथों को केवल चलने के काम में लाते हैं। हज़ारों शताब्दियों से कडी भूमि पर चलने के कारण घोडे की हाथ की शक्ति एक बीच की उँगली में केन्द्रित हो गई है। अनावश्यक उँगलियों का अवशेष टाँगों के अग्र-भाग की खाल के नीचे छिपा रहता है। इसके विपरीत सुअर की अँगुलियाँ बनी हुई हैं, क्योंकि उसे दलदल वाली भूमि पर चलना पड़ता है। दबाव पडने से वे बाहर निकल आती हैं और पर्याप्त सहायता पहुँचाती हैं। ऐसे हाथ केवल मध्यम आकार के जानवरों की सहायता कर सकते हैं। यद्यपि मुलायम धरती पर चलने के लिये हाथो की पाँचों उँगलियाँ बनी हुई हैं किन्तु उन पर इतना अधिक बोझ पडता है कि वे मिल कर एक ठोस पाया बन गई हैं और एक इञ्च मोटी खाल की दीवार के भीतर ढकी रहती हैं।

थोडे से स्तनपायी जल-जीवन में लौट गए हैं, जहाँ से आरम्भ मे समस्त स्तनपायी जीवन आरम्भ हुआ था। ह्वेल, समुद्री शेर और दरियाई घोडे के मछली की तरह के सुफ़ने होते हैं, किन्तु यदि उनकी खाल उतार ली जाये, तो पहचानने में देर न लगेगी कि वे ठीक प्रकार से बने हुए हाथ हैं—और यही स्तनपायियों का मुख्य चिन्ह है।

प्रकाश उत्पन्न करने वाले जानवर

समुद्र में बहुधा ऐसा तीव्र प्रकाश दिखलाई देता है कि उसमें पढ़ा भी जा सकता है। यह प्रकाश उन कीड़ों या जानवरों की चमक होती है जो प्रकाश उत्पन्न करते हैं। ये जीवित कीडे अनुवीक्षण यंत्र द्वारा देखे जाने वाले पौधे, केकडों के कीट-डिम्ब, और मछलियाँ आदि जब लाखों और करोड़ों की संख्या में एक स्थान पर एकत्रित हो जाते हैं तो बड़ा ही तेज़ प्रकाश और चमक सागर-तल पर प्रकट होने लगती है।

हरे प्रकाश के घेरे वाला कीड़ा—

ग्रेट ब्रिटेन के किनारे पर बसन्त ऋतु के अन्त में यह प्रकाश खूब दिखलाई देता है, जब कि समुद्र इन कीडों की अपनी फ़सल तैयार करता है। इन कीडों के प्रकाश से किस उद्देश्य की पूर्ति होती है, इसका निश्चित पता अभी तक नहीं चला है। इसी प्रकार वहाँ के दक्षिण-पश्चिम किनारे पर पाया जाने वाला एक बडा समुद्री कीडा भी भूलभुलैया में डालने वाला होता है।

इस कीड़े को चर्म-पत्र-नली कीड़ा कहते हैं, क्योंकि इसका घर एक नली की तरह होता है। यह अङ्गरेजी अक्षर U की तरह अपना घर छिछले पानी में बनाता है। इस घर का नीचे का भाग रेत पर टिका रहता है और नली के दोनों सिरे पानी के तल से ऊपर निकले रहते हैं। इस घर की ऊँचाई लगभग १ फुट की होती है। नली के भीतर रहने वाला कीड़ा एक ऐसा पदार्थ उत्पन्न करता है जो प्रकाशमान होता है। यह प्रकाश हरे रंग का होता है और नली के सिरे पर अपनी किरणों से एक जाज्ज्वल्यमान घेरा सा बना लेता है। यह प्रकाश ही उस कीड़े

का शत्रु का बन जाता है, क्योंकि प्रकाश को देखकर शिकारी मछलियाँ और विशेष कर जल-व्याल उस ओर आकर्षित होते हैं और अपने पतले सिरों को नली में घुसेड़ कर कीड़े को बाहर निकाल लेते हैं और उसे चट करके सदा के लिये उस प्रकाश को बुझा देते हैं।

शिकार और साथियों को आकर्षित करना—

अपने शरीर से प्रकाश उत्पन्न करने वाले जानवरों को उनके प्रकाश से दो मुख्य और प्रत्यक्ष लाभ होते हैं अर्थात् शिकार और साथियों का आकर्षित होना। समुद्र की गहराई में जहाँ घोर अन्धकार होता है, मछलियों की एक बड़ी संख्या ऐसी होती है जो ख़ूब तेज़ी से चमकती हैं। उनका प्रकाश प्रायः हरे या नीले रंग का होता है। उनके जिन अंगों से प्रकाश निकलता है उन्हें 'फोटोफोरेस' कहते हैं और ये मछलियों के सारे शरीर पर हवा और जल निकालने के मार्गों के समान निश्चित रेखाओं में पाये जाते हैं। समुद्र की तह में रहने वाली मछलियों में पेट की तरफ़ यह प्रकाश होता है जिससे रोशनी ज़मीन पर पड़े और वे सरलता से अपना भोजन ढूँढ़ सकें।

कुछ लुभाने वाली मछलियों के सिरों पर एक लग्गी सी होती है जिसके सिरे पर एक चमकती हुई बल्ब या कुप्पी होती है जिसके द्वारा उसके शिकार उसकी ओर लोभ से आकर्षित होते हैं। जब छोटी-छोटी मछलियाँ उस प्रकाश के पास पहुँचती हैं तो प्रकाश वाली मछली अपना मुँह खोल कर उनको उदरस्थ कर लेती है। मछुए इस बात को जानते हैं, अतः वे इन प्रकाश अंगों को काट लेते हैं और उन्हें अपनी कटियों में लगा लेते हैं, जहाँ वे कई घन्टों तक चमकते रहते हैं। इस प्रकाश को देखकर छलियाँ कटियों के पास आती हैं और स्वयं शिकार बन

जाती हैं। गहरे समुद्र में रहने वाली कुछ दो-शाखा मछलियों में कई प्रकार के प्रकाश होते हैं—हरे, नीले और लाल आदि।

जुगनू—

जुगनू के मक्खी की तरह ६ पैर होते हैं और झींगुर की तरह दो स्पर्श-अंग होते हैं। इसके मुँह का रंग काला और दुम का रंग कालिमा लिये हुये और सारा शरीर नारंगी रंग का होता है। पूँछ के नीचे का भाग चमकता है। यह बहुत कुछ "घनकुट्टी" से मिलता है। उसकी तरह छूने से चटखता नहीं, वैसे उसी का बड़ा रूप मालूम देता है। सिर का पीला भाग जो सारे शरीर से अलग जुड़ा रहता है काफ़ी चिकना, चमकदार होता है। "घनकुट्टी" का शरीर दो बराबर हिस्सों में बँटकर बीच से जुड़ा होता है किन्तु जुगनू के तीन जोड़ होते हैं। १/१० हिस्सा काला भाग; १–६ नारंगी भाग, अलग-अलग शरीर से जुड़े होते हैं। यह लम्बा अधिक और चौड़ा कम होता है उसकी दुम के नीचे का जो भाग चमकता है वह जुगनू की चौड़ाई में दो सूत चौड़ी एक रेखा होती है जो पूँछ के एक ओर से दूसरी ओर तक सफ़ेद रंग की बनी होती है। यह कम तेज़ उड़नेवाला कीड़ा होता है, रेंगता ख़ूब है। परों को तौलता ख़ूब है। परन्तु मालूम ऐसा होता है कि उड़ने की हिम्मत नहीं पड़ती। इसके पर इसके सिर को छोड़ कर बाकी सारे शरीर को ढके रहते हैं। कदाचित् इसके आँखें नहीं होतीं। यह अँधेरे में घुस कर रहना पसन्द करता है। फासफोरस वाली रेखा के ऊपर जो परों का थोड़ा-सा, लगभग अष्टमाँश, भाग होता है वह काला होता है। उसके स्पर्श-अंग बहुत लम्बे नहीं होते। यदि वे किसी वस्तु में हिलग जाते हैं या टेढ़े-मेढ़े हो जाते हैं तो जुगनू उनको अपनी अगली टाँगों से सुलझा कर ठीक कर लेता है। दिन में यह

सोता है और सोते समय अपने स्पर्श-अंगों और पैरों को तथा सिर के काले भाग को समेट लेता है। यदि दिन में उजाले में में छोड़ा जाय तो रेंग कर अँधेरे में घुस कर बैठने की कोशिश करता है, उड़ता नहीं।

जुगनू के समान कुछ कीड़े मुख्यतः अपने साथियों को आकर्षित करने के लिये प्रकाश का प्रयोग करते हैं। जुगनू दो तरह के होते हैं, एक को 'ग्लो-वार्म' और दूसरे को 'फायर-फ्लाई' कहते हैं। दोनों जातियाँ गुबरीला वंश की होती हैं और अपनी परिवृद्धि की प्रत्येक अवस्था में प्रकाश प्रदान करती रहती हैं। उनके अंडों तक में प्रकाश होता है। इस कीड़े की मादा का, किशोरावस्था में, प्रकाश अत्यन्त तेजोमय होता है। दक्षिणी अमरीका की स्त्रियाँ जुगनुओं को माला बनाकर पहिनती हैं।

बिजली उत्पन्न करने वाली मछलियाँ

बिल्ली के बालों या कुछ मनुष्यों के बालों में अँधेरे में कंघी करते समय एक हलकी-सी चट-चट की आवाज होती है और साथ ही बिजली की नीली चिनगारियाँ भी दिखलाई देती हैं। यह बड़ी ही विचित्र बात है कि सारे जानवरों में से कुछ भिन्न-भिन्न मछलियाँ ही ऐसी हैं, जिन्होंने अपनी आवश्यकता के लिये बिजली की शक्ति को जीत लिया है और वे अनेकानेक प्रकार से उसका प्रयोग करके लाभ उठाती है।

पूँछ में बैट्री—

अमरीका की अमेज़न नदी की बिजली वाली 'एल' मछली (जल-व्याल) लोच वंश की मछलियों में से है। उसकी जल-

व्याल की-सी शक्ल बिलकुल दिखावटी होती है। इस मछली के शरीर का ४-५ भाग पूँछ होता है, अर्थात् अन्य अंगों के अनुपात से पूँछ बहुत बड़ी होती है। उसमें बिजली की बैट्री के तीन समूह होते हैं। इस जाति की ६ फुट लम्बी एक मछली कई सौ वोल्ट की ताक़त से टक्कर मार सकती है। वह इस शक्ति को मुख्यतः अपने शिकार के मारने या अचेतन करने में प्रयोग करती है। देखा गया है कि इस मछली ने घोड़ों और आदमियों को डुबो दिया है, क्योंकि उसने अपनी बिजली की शक्ति से उन्हें औंधा करके पानी में गिरा दिया। यह मछली अपनी बैट्रियों को मोटे तौर पर तारबर्की के रूप में भी प्रयोग करती है और इसी से अपनी जाति के अन्य लोगों को अपने आने की सूचना देती है। जैसे ही एक बार एक शिकार पर आघात हुआ नहीं कि वैसे ही आस-पास की समस्त दूसरी बिजली वाली एल मछलियाँ उस स्थान पर दौड़ जाती हैं क्योंकि उन्हें अपने दरियाई साथी से बिजली का संकेत मिल जाता है। इस मछली की दो जातियाँ होती हैं; एक का रंग कुछ लाली लिये हुये भूरा होता है, और दूसरी का, जो अधिकतर पाई जाती है, कुछ कालिमा लिये हुये स्लेटी नीला होता है यानी सुरमई, और उसके सारे शरीर से एक अन्धकारमय लालिमा फैला करती है।

अरब और नील नदी की बिजली पैदा करने वाली 'कैटफ़िश' (बिल्ली मछली) एक भारी भरकम दो फुट या इससे कुछ अधिक लम्बी मछली होती है, जिसका रंग पीला होता है और उसमें भूरे रंग के धब्बे होते हैं। इसके ओठों पर आश्रित आठ लम्बे स्पर्शक होते हैं। यह बहुतायत से मिलती है, और अक्सर अरब लोग इसे खाते हैं और इसे 'रायदा' बिजली मछली कहते हैं।

इसका सारा शरीर एक लिफ़ाफ़े की तरह, बिजली के एक बड़े अंग से ढका रहता है। यद्यपि इसकी शक्ति बिजली वाले जल-व्याल की अपेक्षा कम होती है, तो भी पर्याप्त अधिक होती है। बिजली वाले जल-व्याल आपस में एक दूसरे के आघात से सुरक्षित रहते हैं। किन्तु बिजली उत्पन्न करने वाली 'कैटफ़िश' एक स्थान में रहने वाली स्वजातीय सदस्यों को निश्चय ही मार डालती है।

गठिया के इलाज में प्रयोग—

बिजली की किरन या टारपेडो नामक मछली सारे गरम समुद्रों में आमतौर पर पाई जाती है। उसका सारा शरीर घने रूप से एकत्रित बिजली की बैट्रियों से आच्छादित रहता है, जिनका आकार छः पहलू होता है और वे इस प्रकार स्थिति रहती हैं कि उनका एक सिरा पीठ को छूता है और दूसरा पेट को।

टारपीडो को अंगरेज़ी समुद्री किनारों के लोग सुन्न मछली और फ्रांस के लोग "मानशियरटचेज़" कहते हैं। यह 'ग्रे-मुलेट' के सदृश्य कोमल मछलियों पर प्रहार करती है और उन्हें धीरे-धीरे ऐसे घेर लेती है कि वे बचकर निकल नहीं पातीं। कई झटके देने के पश्चात् यह मछली पस्त हो जाती है और अपनी बैट्रियों में फिर से बिजली उत्पन्न करने के लिये उसे घन्टे दो घन्टे के समय की और पर्याप्त भोजन की भी आवश्यकता होती है।

प्राचीनकाल में इस मछली से गठिया के इलाज का काम लिया जाता था। रोगी को मछली के ऊपर उस समय तक खड़ा रहना पड़ता था जब तक के लिये चिकित्सक की आज्ञा होती थी या रोगी की सहनशक्ति आज्ञा देती थी।

यात्री-जीव

यात्रा करने के लिये जानवर कुप्रसिद्ध हैं। उनमें से लाखों प्रत्येक वर्ष कई यात्रायें करते हैं। इन यात्राओं में उन्हें हजारों मील चलना पड़ता है। लाखों ही जीव परजीवियों के रूप में यात्रा करते हैं किन्तु इनकी यात्रायें केवल घटनावश होती हैं। वे यात्रा करें चाहे न करें इससे उनका कोई तात्पर्य नहीं होता, क्योंकि उनका मुख्य उद्देश्य तो भोजन प्राप्त करना होता है जो अनिच्छुक यजमान उन्हें सदा दे देता है। थोड़े से जीव यात्रा इसलिये करते हैं कि उन्हें सतत गति से ताजा भोजन प्राप्त होता है और उनकी समान भलाई के लिये यह आवश्यक है कि वे गतिशील रहें। इसका सबसे उत्तम उदाहरण कुत्ते होते हैं जो भोजन पा लेने पर भी काफ़ी घूमते-फिरते हैं।

कछुओं को पकड़ने में प्रयोग—

जंगलों में अनेक जानवर ऐसे ही जीवन व्यतीत करते रहते हैं। उष्ण और अर्ध-उष्ण समुद्रों में पाई जाने वाली 'शार्क सकर' (नाके को चूसने वाली) मछली एक अत्यन्त प्रसिद्ध उदाहरण है। इस मछली के सिर की चोटी पर एक बड़ी-सी अण्डाकार चूसने वाली टिकिया लगी रहती है जो वास्तव में पिछले सुफ़नों का परिवर्तित रूप होती है। यह टिकिया किसी भी साधारण चपटी चीज़ पर बड़े जोर से चिपक जाती है। इस प्रकार यह मछली जो तैरने में बड़ी सुस्त और काहिल होती है, शार्कों, कछुओं और जहाज़ों के ढाँचों में चिपक कर स्वभावतः यात्रा करती रहती है। वह कुछ दैत्याकार मछलियों के मुँह के भीतर भी चिपक जाती है और इस प्रकार स्थापित होकर बजाय स्वयं ढूँढ़ कर शिकार करने के वह वहाँ बैठे-बैठे तरह-तरह के भोजन चुन-चुन कर खाया करती है।

प्राचीन समय से शार्क को चूसने वाली इस मछली का प्रयोग कछुए पकड़ने में किया जाता है। मछुए बहुत-सी शार्क चूसने वाली मछलियों को अपनी नाव के एक कोने में एकत्रित कर लेते हैं और प्रत्येक की पूँछ में एक लम्बी डोरी बाँध देते हैं। जैसे ही कोई कछुआ दिखलाई देता है, वैसे ही एक चूसने वाली मछली छोड़ दी जाती है और वह तुरन्त अपने शिकार की ओर चल देती है। जब वह शिकार पर चिपक जाती है तब दोनों को खींच कर नाव पर रख लिया जाता है।

बच्चा सिप्पियों की सैर—

बच्चे और निराश्रय जानवरों की भलाई के लिये यात्रा आवश्यक हो सकती है और यह भिन्न-भिन्न प्रकार से निश्चित होती है। मन्द-गति से चलने वाली अनेक नदियों, झीलों और तालाबों में ऐसी जेबरा सिप्पियों की एक बड़ी संख्या मिल सकती है जो खाने योग्य सिप्पियों से मिलती-जुलती हैं किन्तु उनमें सुन्दर धारियाँ होती हैं। जेबरा सिप्पियों के बच्चे, उत्पन्न होने के थोड़े ही समय के पश्चात् नदी की तह में बैठ जाते हैं और वहाँ मछलियों के किसी झुण्ड के आने तक पड़े रहते हैं। जब ऐसा होता है तब प्रत्येक बच्चा-सिप्पी बड़े जोर से अपने दोनों ढक्कनों को खोलती और बन्द करती है। इस क्रिया से ऊपर की ओर एक लम्बा और लसदार डोरा निकल आता है। यदि सब काम ठीक होता गया तो वहाँ से गुजरने वाली किसी मछली के वह डोरा चिपक जाता है, और बच्चा-सिप्पी डोरे के सहारे से चढ़कर उस मछली की खाल में घुस जाती है और वहाँ उस समय तक ठहरती है जब तक बड़ी होकर इस योग्य नहीं हो जाती कि पुनः नदी में लौट जाकर अपना स्वतन्त्र जीवन आरम्भ करे।

बर्रों का शोषण—

बर्र के अनेक शत्रुओं में से एक खास गुबरीला होता है जिसके बच्चे जीवित ही नहीं रह सकते यदि वे अपने आरम्भिक जीवन में किसी तरकीब से एक बर्र की पीठ पर बैठ कर एक लम्बी स्थाई यात्रा न करें। इस घटना को कार्यान्वित करने के लिये गुबरीले का बच्चा लकड़ी के किसी ऐसे खम्भे पर चढ़ जाता है जहाँ लकड़ी के गूदे की खोज में बर्रों के आने की सम्भावना होती है, क्योंकि लकड़ी के गूदे से बर्रें अपना कागजी छत्ता बनाती हैं। गुबरीले का बच्चा उस समय तक अपनी पिछली टाँगों के सहारे से उस खम्भे पर लटका रहता है जब तक कोई बर्र उसकी पहुँच में नहीं आ जाती। बर्र के मिलते ही वह उसकी पीठ पर सवार होकर बर्र के छत्ते में पहुँच जाता है। वहाँ पहुँच कर वह बर्र के कीट-डिम्ब को समाप्त कर देता है और अन्ततोगत्वा एक कीट-कोष में घुस कर उस समय तक रहता है जब तक पूरा गुबरीला बनकर बाहर नहीं निकलता। इसके पश्चात् बर्र का शोषण फिर से आरम्भ होता है।

प्राणी-राज्य के सुरंग बनाने वाले जीव

हमारे सामाजिक जीवन में सुरंगों का महत्व दिन प्रति दिन बढ़ता जाता है। सुरंगें स्थान बचाने का एक सुगम उपाय हैं। रेलों और मोटरों के गोदाम अधिकाधिक जमीन के नीचे बनने लगे हैं। प्रायः सड़कें नीचे जाकर पार की जाती हैं और आज-कल हवाई आक्रमणों से बचने के लिये धरती के भीतर ही शरण मिलती है।

खोदने वाले कीड़े—

सबसे प्रथम कीड़ों ही ने सुरंगें बनाने का काम आरम्भ किया था। खोदाई करने का उनका काम केवल उन्हीं की रक्षा के लिये अनिवार्य नहीं है किन्तु वनस्पतियों की शक्ति और जीवन के लिये भी आवश्यक है और वनस्पतियों के लिये लाभदायक होने के कारण अन्य जानवरों के जीवन के लिये भी उपयोगी होता है। नली के आकार के छोटे-छोटे कीड़े जो सामान्यतः समस्त ताल-तलैयों में पाये जाते हैं, अपने आध इञ्च लम्बे शरीर से चौबीस घन्टे में नौ गज़ मिट्टी निकाल फेंकते हैं। इसी प्रकार केंचुआ भी सुरंग बनाता है। वह अपने शरीर में एक ओर से मिट्टी को प्रवेश करता है, अर्थात जो कुछ मिलता जाता है उसे निगलता जाता है और दूसरे सिरे से निःसार को बाहर निकालता जाता है। किसी बाग़ की एक एकड़ भूमि की नीचे की पन्द्रह टन मिट्टी को निगल कर कीड़े उसे प्रति वर्ष ऊपर के तल पर ले आते हैं।

कीड़ों के सदृश्य ही सुरंग खोदने वाले समस्त जीवों का शरीर लम्बा ही होता है चाहे वे शिकारी कुत्ते, नेवले की जाति वाले जीव, छछूँदर, छछूँदरी, झींगुर, घोंघे या लम्बी टाँगों वाले कोए हों। सुरंगें बनाने के ढंगों में बड़ा अन्तर होता है। खोदने के काम में सारे स्तनपायी अपने अगले पैरों का प्रयोग करते हैं और पिछले पैरों से खोदी हुई सामग्री को हटाकर दूर फेंकने का काम लिया जाता है। इस प्रकार अफ्रीका का चींटी-रीछ सुरंग खोदने में फावड़ा, गैती लेकर काम करने वाले दो आदमियों से आगे बढ़ जाता है।

संसार का कुरूपतम स्तनपायी—

सुरंग खोदने से किसी जानवर की टाँगें और सामान्य आकार ही प्रभावित नहीं होते बल्कि उसकी बाहरी त्वचा पर भी असर पड़ता है। जैसे छछूँदर के रोएँ इतने छोटे और घने होते हैं कि उन पर अधिक देर तक कोई कूड़ा, मिट्टी चिपकी हुई रह नहीं सकती। 'आरमाडिल्से' के समान कुछ सुरंग बनाने वालों ने ऐसी कड़ी खाल उन्नत कर ली है और उसमें एक के ऊपर दूसरी ऐसी पत्तरें चढ़ गई हैं कि उन पर से पानी ऐसे फिसल जाता है जैसे कि खपरैल वाली छत से। अफ्रीका की मरुभूमि का चूहा एक ऐसा जीव है जिसने तप्त सूर्य के नीचे गरम रेत में सुरंग बनाते-बनाते, अपने सारे बाल गिरा दिए हैं और दरियाई गैंडे के समान एकदम निहंग हो गया है। कदाचित् वह सारी पृथ्वी के जानवरों में सबसे अधिक कुरूप होता है।

सीसे में छेद करने वाली बर्र—

मिट्टी के अतिरिक्त दूसरे अनेक पदार्थ होते हैं जिन पर प्रकृति के विशेषज्ञ खोदाई करने वाले विजय प्राप्त करते हैं। बहुत से घुन, गुबरीले और बड़े-बड़े भिनगे लकड़ी में वैसे ही सुरंग कर देते हैं जैसे कि कीड़े मिट्टी में। वे अपने मल के रूप में केवल निःसार वस्तुओं ही को नहीं निकाल फेंकते किन्तु लकड़ी के बुरादे के छोटे-मोटे ढेर निकाल बाहर करते हैं। एक घुन तीन इञ्च मोटी चमड़े की जिल्द बँधी हुई पुस्तक के आर-पार नलीदार सुरंग बना लेते हुये देखा गया है। लकड़ी में छेद करने वाली बर्र मोटे सीसे की चद्दर से मढ़े हुये सनोवर की लकड़ी के कुन्दे में छेद करके घुस जायगी।

घोंघों की एक जाति होती है जो लकड़ी, स्लेट के समान एक मुलायम पत्थर और कठोरतम चूने के पत्थर में लम्बी-चौड़ी

सुरंगें बना लेती है। ये सुरंग खोदने वाले अपने मज़बूत पैरों के सहारे से अपनी सिप्पी को हिलाते हैं और सिप्पी की पनालियाँ छेनी का काम करती हैं। इस रीति से केवल चूने के पत्थर ही नहीं किन्तु मूँगे की चट्टानें तक तोड़ डाली जाती हैं। पथरीले किनारे निरन्तर गिरते-बनते रहते हैं। सुरंग करने वाले ये समुद्री जीव हमारा लाखों रुपये का नुक़सान करते हैं, ठीक उसी तरह से जैसे लकड़ी खाने वाले कीड़े करते हैं।

जानवर सोते कैसे हैं ?

नींद की परिभाषा करना एक सरल-सी बात मालूम देती है। वास्तव में वह मात्रा या अंश की बात है, और जो स्थिति एक के लिये जाग्रतावस्था है वही दूसरे के लिये घोर निद्रा हो सकती है। जितना ही बड़ा और उच्चतर मस्तिष्क होगा उतना ही कम उसे पूर्ण विश्राम का ज्ञान होगा। मस्तिष्क में सतत उतार-चढ़ाव होते रहना ही निद्रा है, इसी से स्वप्नों की व्याख्या भी होती है, जो हम में और कुत्ते-बिल्ली के समान जानवरों में प्रत्यक्ष प्रकट होते हैं। मस्तिष्क का कुछ क्षेत्र सदा कार्य करता रहता है; साधारण स्वास्थ्य में उसका समस्त भाग कभी भी निष्क्रिय नहीं होता।

लीमर बन्दर को रात्रि की आवश्यकता नहीं होती—

एक पुरानी कहावत है कि "छै घन्टे की नींद पुरुषों के लिये सात घन्टे की स्त्री के लिये और आठ घन्टे की मूर्ख के लिये, होती है।" किन्तु वर्तमान ज्ञान के प्रकाश में उपर्युक्त कहावत [illegible] अर्थ नहीं रहा। उत्तमतम बुद्धि वाले कुछ लोगों को

सोने के लिये चौबीस घन्टे में केवल पाँच घन्टे पर्याप्त होते हैं, कुछ को आठ या नौ घन्टे और कुछ औसत लोगों को इससे भी अधिक।

मस्तिष्क-शक्ति में यद्यपि पशुओं की तुलना मनुष्य से नहीं की जा सकती, तो भी पशुओं में विश्राम की आवश्यकता बड़ी विभिन्नता के साथ प्रकट होती है। बनमानुष और बन्दर बहुत कुछ हमारे ही सदृश्य दिखलाई देते हैं, क्योंकि ये हमारे ही अनुसार समय का प्रयोग करते हैं। दिन का प्रकाश होते ही वे सक्रिय हो जाते हैं और संध्या का अन्धकार होते ही उन्हें विश्राम की आवश्यकता अनुभव होने लगती है। हमारे रात के पहरुओं या चौकीदारों और बाजार में काम करने वालों के समान कुछ लीमर बन्दरों ने प्राकृतिक व्यवस्था को उलट दिया है, किन्तु तो भी उन्हें प्रत्येक चौबीस घन्टों में उतने ही घन्टे सोने की आवश्यकता होती है।

देहातों में रहने वाले घुमक्कड़ जानवरों ने अपने विश्राम के समय को बहुत कम व्यवस्थित किया है। गर्मी की ऋतु में एक खुले खेत रहने वाली एक गाय अपने शत्रुओं से सुरक्षित होने पर भी अपने पैतृक लक्षणों को पार नहीं कर पाती, अर्थात् वह प्राचीनकाल की उस स्मृति को नहीं भुला पाती जब प्रत्येक ग्रास खाते समय इस बात की ओर चौकसी की दृष्टि रखी जाती थी कि कोई आने वाला खतरा तो नहीं सम्भव है।

चरने वाले अधिकतर स्तनपायी थोड़े-थोड़े अन्तर से खाते और सोते रहते हैं; प्रकाश और अन्धकार उनके काम करने और सोने के समय को निर्धारित करने के लिये आवश्यक नहीं होते। हाथी चार घन्टों से अधिक समय वास्तविक निद्रा में व्यतीत करते हुये बहुत कम देखे जाते हैं यद्यपि वे अपने विचित्र ढङ्ग

से "विश्राम" करते हुये एक ही स्थान पर उससे दूने समय तक बने रह सकते हैं। वे अपने विश्राम में निरन्तर पैर हटाते रहते हैं और ताल-सुर में झूमा करते हैं।

क्या ह्वेल मछली सोती है ?

इस प्रश्न का उत्तर देना असम्भव है, क्योंकि ह्वेल के घन्टों पानी की सतह पर रहने पर भी निश्चयात्मक रूप से यह नहीं कहा जा सकता है कि वह वास्तव में सोई हुई है या नहीं ? निरीक्षण करके लोगों ने पता लगाया है कि उसका जल में घूमना कभी भी बन्द नहीं होता और वह बिना रुके तैरती रहती है किन्तु रात्रि को उसकी चाल कुछ धीमी अवश्य हो जाती है।

सम्भवतः एक ह्वेल विश्राम के समय में भी एक यंत्र की तरह वैसे ही तैरती रहती है जैसे कि युद्धकाल में मार्च करते हुए कुछ सिपाही सोते हुए चले जाते हैं। मालूम हुआ है कि कुछ मछलियाँ सोती हैं। उनको वे जातियाँ जो पानी के ऊपरी तल पर रहा करती हैं रात को गहराई में चली जा सकती हैं और बिलकुल नीचे वाली ऊपर आ सकती हैं। 'वारासे' सचमुच कुत्ते की तरह करवट के बल लेटती है, और बहुत-सी दूसरी सामान्य मछलियाँ चट्टानों, जलीय पौधों आदि से सट जाती हैं। मुलेट मछलियाँ साधारणतयः बड़े झुण्डों में तैरती हैं। रात को झुण्ड छिन्न-भिन्न हो जाता है और प्रत्येक मछली भिन्न-भिन्न ओर चल देती है और सब शान्त हो जाती हैं। प्रकाश उन्हें तुरन्त इकट्ठा कर देता है और वे फिर गतिशील हो जाती हैं।

जाड़े की निद्रा—

जंगली चूहे और 'डारमौस' नामक गिलहरी के समान एक जानवर की जाड़े की नींद प्रसिद्ध है। इनकी निद्रा में

इनका तापमान उससे बहुत गिर जाता है जो प्रायः निद्रा में गिरा करता है। कुछ पक्षियों को भी सोते में ऐसी ही मृत्यु की-सी मूर्छा आ जाती है। जाड़े की ऋतु में भन्न-भन्न करने वाली चिड़ियाँ ऐसी गहरी नींद में सोती हैं कि उन्हें उनके अड्डे से उठाने में उनके एक-एक पंजे को अलग-अलग छुटाना पड़ता है।

आस्ट्रेलिया का 'फ्राग-माउथ' या 'मोरपोके' उल्लू ऐसी घोर निद्रा में सोता है कि उसके पास ही पड़े हुए उसके साथी के गोली से मारे जाने पर भी वह अपने को जगाने में असमर्थ होता है। इस पक्षी को बगैर जगाये हुये पेड़ की शाखा से उठा कर थैले में रख लिया जा सकता है।

पक्षी-जगत में बुनकर

प्रकृति ने मशीनों की बनी हुई हमारी अनेक अटपट आवश्यक वस्तुओं को पहिले ही से सोच लिया था। अतः इसमें आश्चर्य की बात नहीं कि आदिम मनुष्य ने निम्नकोटि के पशुओं के अधूरे आरम्भ का अध्ययन करके इन वस्तुओं के सम्बन्ध में अपना प्रथम विचार धारण किया हो। उदाहरणार्थ बुनने की क्रिया बहुत ही प्राचीन है और वह मनुष्य का आविर्भाव होने के बहुत पहिले की है।

चिड़ियाँ फैशन को प्रारम्भ करती हैं—

संसार के दो ओर रहने वाली चिड़ियों की दो जातियाँ अर्थात् अमेरिका की घोंसला लटकाने वाली और प्राच्य देशों की

बुनने वाली, अब तक बुनने का व्यवहार जारी किये हुये है और उन्होंने पर्याप्त पूर्णता भी प्राप्त कर ली है। ये छोटी चिड़ियाँ, जो सारिकाओं या तूतियों से अधिक बड़ी नहीं होतीं, अपने बड़े-बड़े सामूहिक घोंसले बनाने में सूखी घास का प्रयोग करती हैं और प्रायः उन्हें पेड़ों की शाखाओं से लटका देती हैं ताकि साँप, बन्दर और अन्य लुटेरे उन तक पहुँच न सकें।

अमेरिका में इन चिड़ियों के लिये लोग विशेष स्थान निश्चित करके रँगा हुआ ऊन रख देते हैं, जिसका परिणाम बड़ा आश्चर्य-जनक होता है। चिड़ियाँ अपना घोंसला बनाने में इस रँगे हुये ऊन का प्रयोग करती हैं। वे नीले रंग को अधिक पसन्द करती हैं। ये चिड़ियाँ फ़ैशन का आरम्भ कर देती हैं और कुछ काल के पश्चात् लोग उसकी नक़ल करते हैं। चिड़ियों के इस प्रकार से सजे हुये उपनिवेश का दृश्य ऐसा होता है मानों पेड़ों पर इन्द्र धनुष के रंग से रँगे हुये बड़े-बड़े फल उत्पन्न हुए हैं।

दर्जी चिड़ियाँ पत्तियों को सीती हैं—

भारतीय दर्जी चिड़ियाँ, जो गाने वाली चिड़ियों की एक जाति हैं, बुनने की कला को एक पग और आगे बढ़ाती हैं। वह केवल बिना क्रम के बलों और भाँजों से संतुष्ट नहीं होतीं, किन्तु घास का प्रयोग करके लटकती हुई पत्तियों को ऐसे सी देती हैं मानों किसी ने एक फ़ीते के दो झुमकों को इकट्ठा कर दिया हो। इस प्रकार बने हुये कटोरे के बीच में घास से बुना हुआ घोंसला स्थिति रहता है।

कुछ भक्षणीय चिड़ियों के घोंसलों की रचना में भी थोड़ी बहुत बुनावट होती है। चीन की अबाबीलें अपने घोंसले ऊँची चट्टानों पर बनाती हैं। वे अपने घोंसलों की घास और बालों आदि को चिपकाने में एक लसदार तार का प्रयोग करती हैं।

मुँह बन्द करने में रेशम का प्रयोग—

रेशम, रेशम के कीड़ों का ही एकाधिकार नहीं है। अनेक पतिंगे, तितलियाँ और असंख्य दूसरे कीड़े उन कीटकोषों को बनाने में रेशम का प्रयोग करते हैं, जिनमें उन्हें घुन अवस्था से पर निकलने से पूर्व की अवस्था में और उसके पश्चात् पूर्ण कीट बनने में आश्रय मिलता है। केडिस कीड़ा जो मछली पकड़ने में चारे की तरह प्रयोग किया जाता है, केडिस-मक्खी बन कर निकलने के पहिले अपने पत्थर या लकड़ी से बने हुए "सन्दूक" के मुँह को इसी प्रकार बन्द कर देता है।

ये रेशम बहुधा बड़े चिपचिपे होते हैं। उष्ण देशों की चींटियों की एक नसल ऐसे घुन या कोए उत्पन्न करती है जो सरेस के समान चिपकने वाले होते हैं। तरुण चींटियां पत्तियों से अपने घोंसले बनाती हैं और उन पत्तियों को सट कर जमाने के लिये अपने घुनों को जीवित टेकुओं की तरह प्रयोग करती हैं। चींटियाँ अपने को दो दलों में क्रम से स्थिर कर लेती हैं, एक दल दोनों पत्तियों को एक साथ खींचे रहता है और दूसरा दल जिसके प्रत्येक श्रमिक के जबड़ों में एक घुन होता है—किनारों को ऐसे जमाता है कि वे अलग-अलग न हो सकें।

मकड़ी के रेशम की ताँत—

मकड़ी का रेशम बुनकर जाल बनाये जाते हैं, वे या तो स्वीकृत नमूने के होते हैं या चोंगे के आकार के; जैसा कि घरेलू मकड़ी बनाती है। जलीय मकड़ी अपने रेशम का प्रयोग उपयुक्त प्रकार से करती है और अँगुलि-त्राण (दर्जी की अँगुली में पहनने की टोपी) के आकार के औंधे किए हुए अपने घोंसले में हवा भर देती है, तथा उसमें अपने अंडे रखती है। सर्वोत्तम ताँत

स्तनपायी-मूलक नहीं होती किन्तु मकड़ी के रेशम से उस समय प्राप्त होती है जब कि बड़ी मकड़ियाँ उसे अर्ध-द्रव रूप में उत्पन्न करती हैं। इसके पश्चात् उसे आवश्यक लम्बाई तक खींचा जा सकता है।

घोंघों द्वारा बुनने में प्रयोग किया हुआ रेशम भी काफ़ी मज़बूत होता है। इसके सहारे से वे अपने आपको चट्टानों में लटका लेते हैं। भयंकर तूफ़ानों को छोडकर वह शेष सभी अवस्थाओं को सहन करने के लिये यह पर्याप्त मज़बूत होता है। भक्षणीय घोंघों को ताज़ा खोलने पर सदा इस रेशम का एक गुच्छा मिल सकता है। वह निर्दोष होता है, और कुछ लोगों की धारणा के अनुसार विषैला कूड़ा-करकट नहीं होता।

इङ्गलिश चैनल के किनारे के कुछ घोंघों की सिप्री एक फुट या अधिक लम्बी होती है। इनके द्वारा कता हुआ रेशम घोड़ों की पूँछ के समान होता है। इससे हाथ के दस्ताने और गले की नेकटाइयाँ बनाई जाती हैं, किन्तु इनकी मात्रा इतनी अधिक नहीं होती कि यह व्यापार का प्रश्न बन सकें।

जानवरों की उम्रें

तत्व या द्रव्य अक्षय है, और जीवित तत्व उपपन्न रूप से अमर है। यदि किसी युवा और स्वस्थ्य जानवर के शरीर से कोषों की कृत्रिम उत्पत्ति उन कोषों को किसी पोषक माध्यम में रखकर की जाती है, तो कोषों का विभाजन उपस्थित हो जाता है। और यदि कुछ समय के पश्चात् नवीन वृद्धि से एक दूसरी की जाती है और यह क्रम आगे चलता रहता है, तो

जानवर के मर जाने के बहुत काल पश्चात् तक मूल जानवर का
एक भाग लगभग असीम काल तक चला जा सकता है।

किन्तु जहाँ तक हम जानते हैं घटना यह होती है कि कोई
जीव अपने आप सदा जीवित नहीं रह सकता। यद्यपि यह
आवश्यक नहीं है कि किसी जीवित रचना के सहारे कोष क्षय
हो जायें, किन्तु आगे-पीछे, उक्त पेचीली रचना का एक भाग
शिथिल पड़ जाता है, और सारी रचना अस्त-व्यस्त हो जाती
है और परिणाम होता है मृत्यु। तात्पर्य यह हुआ कि प्रत्येक
जीवधारी अनजाने ही आत्महत्या करता है।

उम्रें जानने के ढंग—

अब तक लोग घोड़े और बैलों के दाँत, कछुओं की ढाल
और मछलियों की हड्डियाँ देखकर उनकी उम्रें जाना करते थे।
किन्तु पिछले पचास वर्षों में जीवन की आयु का विस्तार जानने
पर गम्भीरता से ध्यान दिया गया है। चिड़ियाघरों, बाग-बगीचों,
खेतों, मछलीघरों आदि समस्त स्थानों से जानवरों के जीवन-
विस्तार के अंक एकत्रित किये गये हैं, और क्रम से लिखे गये
हैं। अनेक ध्यान आकर्षित करने वाले तथ्य प्रकाश में आ गये हैं
और प्राचीन प्रतिष्ठित भ्रम दूर हो गये हैं।

पहली बात तो यह है कि जंगली जानवरों की जीवन-
सीमाएँ अनुमानित ही रहेंगी, और बन्धन में रखे हुए जानवरों
से प्राप्त अंक साधारण सीमाओं से सम्भवतः बढ़ जाते हैं।
मनुष्य की देख-भाल में पाला हुआ जानवर अपने शत्रुओं,
बीमारियों और जंगल की सारी आकस्मिक घटनाओं से सुर-
क्षित रहता है।

शारीरिक क्षीणता—

कितने दिनों तक शरीर रूपी यंत्र, चाहे वह किसी पौधे का हो या जानवर का, चलेगा यह बहुत कुछ निर्भर करता है उसकी घिसन और टूट-फूट पर। एक छोटे शरीर की अपेक्षा एक बड़े शरीर के घिसने में अधिक समय लगता है। इससे यह सिद्धान्त निकलता है कि जो जानवर जितना बड़ा होता है उतनी ही उसकी उम्र ज़्यादा होती है। किन्तु ऐसा कोई जानवर नहीं जाना गया है जो दैत्याकार सेक्यूइया वृक्ष से अधिक जीवित रहा हो। यह वृक्ष बीस शताब्दियों को भी पार कर जाता है। इसके विरुद्ध एक समुद्री पुष्प के शक्य या उपपन्न जीवन-विस्तार की सीमा कोई नहीं बाँध सकता। नेलसन परिवार में सौ वर्ष से भी अधिक समय से रहते हुये एक समुद्री फूल के आकार और शक्ति में कोई परिवर्तन नहीं दिखलाई देता।

एक समुद्री फूल शान्तिमय जीवन व्यतीत करता है और उसका कोई शत्रु नहीं होता। किन्तु इसके विपरीत एक झींगा को सदा कोई न कोई खतरा बना ही रहता है। मिलपोर्ट के मछलीघर में पाला हुआ एक दैत्याकार केकड़ा चौवालिस वर्ष का पुराना हो गया है और अब उसमें बुढ़ापे के चिन्ह प्रकट होने लगे हैं। स्वयं उपस्थित होने वाले सारे खतरों के अतिरिक्त एक केकड़ा अपनी बहुत-सी शक्ति नियमित समय पर अपनी सिप्पी बदल-बदल कर क्षीण कर देता है, और इस घटना से कभी-कभी इस छिलकेदार मछली को अपना जीवन भी उत्सर्ग करना पड़ता है।

हाथी चालीस वर्ष में बुड्ढा हो जाता है—

जो पशु-पक्षी या अन्य जानवर बन्धन में रखे जाते हैं उन्हीं के सम्बन्ध में विश्वसनीय प्रमाण मिल सकते हैं। बहुधा कहा जाता है कि ह्वेल मछली की आयु हाथी से अधिक होती है, किन्तु इसका कोई विशेष प्रमाण नहीं है और इसमें शंका भी मालूम देती है, क्योंकि कोई हाथी या हथनी बीस वर्ष के पहले पितृत्व या मातृत्व नहीं प्राप्त करती, किन्तु एक ह्वेल ढाई वर्ष में पिता या माता बन जाती है। यह एक माना हुआ सिद्धान्त है कि जो जीव जितनी जल्दी युवा अवस्था प्राप्त करता है उतनी ही उसकी आयु कम होती है।

तथाकथित लम्बे जीवन का दूसरा जानवर गधा है, किन्तु वह बहुत ही कम पच्चीस वर्ष के पार पहुँचता है। बन्धन में पले हुये बाघ बहुधा चालीस वर्ष की आयु तक जीवित रहते हैं। यह आयु साधारण काम करने वाले एक घोड़े से अधिक होती है, और घरेलू बिल्लियों से तिगुनी। बड़े कँगारू छोटी जाति वालों से दूने दिनों तक जीवित रहते हैं। भालू-रीछ की उम्र 'बैजर' (अर्थात् रीछ के समान एक चौपाया) और 'फेरेट' (नेवले की जाति का एक जानवर) से दूनी होती है। किन्तु कुत्तों का विचार करते समय हमारे इस सिद्धान्त पर बड़ा धक्का लगता है कि जो जानवर शरीर में जितना ही बड़ा होगा वह उतने ही अधिक काल तक जीवित रहेगा। कुत्तों की जातियों में एक बड़ा डेन और पेकींनीज लगभग बराबर उम्र तक जीवन का सुख भोगते हैं।

दूध देने वाले जानवरों की उम्र की सूची इस प्रकार है—

जानवर	उम्र साल	जानवर	उम्र साल
खरगोश	५—१०	गाय	२५—३०
चूहा	६	जेब्रा	२५—३०
गिनीपिग	६—७	गधा	२५—३०
गिलहरी	६—१५	घोड़ा	२५—४०
बिल्ली	९—१०	चीता	२५—३५
बिज्जू	१२	रीछ	२५—३५
लोमड़ी	१४	चिम्पेंजी	३१
गीदड़	१४	दरियाई घोड़ा	३५
कुत्ता	१०—१५ (कभी ३० तक)	बन्दर	३०
चरख	१४	गैंडा	३७
चिमगादड़	१५	जिराफ़	१९
भेड़, बकरी	१५	हाथी	१००
लामा	१७	हिरन	२०

पक्षी-जगत की आयु—

गिद्ध, गरुड़ और उल्लू बहुतेरे अन्य पक्षियों की अपेक्षा अधिक जीते हैं। पालतू गिद्ध आम तौर से चालीस वर्ष से अधिक दिनों तक जीवित देखे गये हैं और सत्तर वर्ष के एक गरुड़ का भी उल्लेख मिलता है। परों का ह्रास और चोंच की अति-वृद्धि को तोतों की बड़ी आयु का प्रमाण माना जाता है किन्तु वास्तव में ये दोनों बातें अस्वस्थ्य और उपेक्षा से रखे जाने की द्योतक हैं।

अलीगढ़ के विश्वविद्यालय के अध्यापक मिस्टर अब्दुल वशीर खाँ ने अपनी पुस्तक "हैवानी दुनियाँ के अजायबात" में

एक दूसरे की पुष्टि करती हुई पाई जाती हैं। सौ वर्ष की पुरानी कही जाने वाली मीठे पानी की मछली जाँच करने पर कदाचित् ही तीस वर्ष से ऊपर की निकलती है। सम्भवतः इन मछलियों पर जम जाने वाला कुकुरमुत्ता बहुधा उनकी अधिक आयु का भ्रम उत्पन्न करता है, और इसीसे उनकी झूठी प्रसिद्धि हो जाती है। लंडन के चिड़ियाघर की दैत्याकार बिल्ली-मछली साठ वर्ष से ऊपर की और 'स्टरालिट' छियालिस वर्ष की पुरानी मौजूद है। अब तक इतनी ही बड़ी मछलियों का पता चला है। 'रॉस-शायर' का एक जल-व्याल वहाँ के एक तालाब को ४० वर्ष से सुशोभित कर रहा है। घोंघों के सम्बन्ध में प्रायः यह देखा गया है कि उनके किनारों से यह पता चल जाता है कि उनकी वृद्धि चालू वर्ष के लिए कब रुक गई, जाड़ा प्रायः अपेक्षाकृत उनके अचल रहने का समय होता है। औसत कस्तूरा-मछली जो खाई जाती है चार वर्ष से अधिक आयु की नहीं होती।

छोटे-बड़े जानवरों की अनुमानित उम्रें--

सबसे छोटे जानवर जैसे प्रटोजोआ और वेक्टेरिया आदि का आयुकाल इतना सूक्ष्म होता है कि हम उसे सोच ही नहीं सकते। इनका प्रत्येक व्यक्ति अपने जैसे असंख्य जीव एक घण्टे में उत्पन्न कर सकता है। इनकी स्वाभाविक मृत्यु कभी नहीं होती। ये विभाजित होकर बढ़ते रहते हैं। इसीलिये इनकी मृत्यु का समय निश्चित नहीं किया जा सकता और इनकी कोई लाश भी नहीं मिलती। इनकी मृत्यु प्रतिकूल परिस्थितियों में फँस जाने पर होती है जैसे गरम पानी आदि। अतः उनके जीवनकाल के सम्बन्ध में कुछ कहा नहीं जा सकता।

अन्य कीड़े-मकोड़ों का जीवनकाल इस प्रकार है :—

पानी का स्पञ्ज, केंचुआ, सितारा मछली, समुद्री-साही, खनखजूरा आदि की आयु १ साल की होती है, किन्तु केंकड़ा ९ साल और झींगा मछली २० साल तक जीवित रह सकती है।

जो कीड़े १ फुट से अधिक लम्बे होते हैं वे कई साल तक जीवित रहते हैं।

गुलाम चींटियों की रानी १३ वर्ष तक, दीमक की रानी ४ वर्ष तक, और मधु-मक्खी की रानी ३ वर्ष तक जीवित रहती हैं। चींटी श्रमिक कुछ सप्ताह में, मधु-मक्खी श्रमिक एक साल में और उनके नर ४ मास में मर जाते हैं। बर्रों की मादा की आयु २ साल और नर की ३ मास होती है।

तितिलियों के जीवन का अधिक भाग उनको कीट-डिम्ब और इल्ली अवस्था में बीत जाता है और वे अपनी पूर्णावस्था में केवल कुछ ही दिनों की मेहमान रहती हैं। इस प्रकार उनके जीवन का समस्त काल लगभग एक साल तक पहुँच जाता है। घरेलू मक्खी लगभग ३४ दिन तक जीवित रहती है। किन्तु चारपाई का खटमल बिना भोजन के ६ साल तक जीवित रह सकता है। मकड़ी प्रायः पहिले ही जाड़े में मर जाती है और यदि जाड़ा पार कर गई तो दो-तीन साल तक जीवित रह सकती है।

प्रायः यह देखा गया है कि हड्डीदार जानवरों का जीवन पर्याप्त लम्बा होता है। भिन्न-भिन्न प्रकार की मछलियों की आयु भिन्न-भिन्न होती है। शार्क और सालमन मछली सौ वर्ष की आयु प्राप्त कर लेती हैं किन्तु अन्य मछलियाँ इससे कम समय तक जीवित रहती हैं। एल की उम्र ६० साल होती है।

पानी का मेंढक ६ वर्ष से लेकर १२ वर्ष तक जीवित रहता है किन्तु ज़मीन पर रहने वाला मेंढक ३६ साल तक जीवित पाया गया है।

मछलीघरों में पाले हुये घड़ियाल ४० वर्ष तक जिन्दा रहते हैं और अनुभवी लोगों का ख्याल है कि साँप और छिपकलियाँ भी इतने ही समय तक जीवित रह सकती हैं। बड़ा कछुआ १०० वर्ष तक जीवित रहता है और गिरगिट की आयु केवल ४ साल की होती है।

नाड़ी की गति और आयु का परस्पर सम्बन्ध--

नाड़ी की चाल और जानवर की उम्र में एक विशेष सम्बन्ध होता है। जानवर की नाड़ी जितनी तेज़ होती है उतनी ही उसकी उम्र कम होती है, जैसे खरगोश, गिलहरी और चूहे आदि जानवरों की नाड़ी की चाल ३०० से ५२० तक प्रति मिनट होती है। ये कम उम्र के होते हैं। इनकी आयु अधिक से अधिक ५ वर्ष से १० वर्ष के बीच में होती है।

बिल्ली और कुत्तों की नाड़ी की चाल कम है अतः उनकी आयु अधिक होती है। आदमी की नाड़ी की चाल और भी कम होती है अतएव उसकी उम्र और भी ज्यादह होती है। प्रायः स्त्रियाँ पुरुषों से कम आयु प्राप्त करती हैं और इसीलिये उनकी नाड़ी की चाल पुरुषों की अपेक्षा अधिक होती है। पुरुषों की नाड़ी की गति ६० से ७० तक होती हैं और स्त्रियों की ६५ से ८० तक। एक सीमा तक यही नियम चिड़ियों पर लागू होता है। जल-जीव भी इसी नियम के आधीन होते हैं जैसे मगर और नाके १०० वर्ष तक जीवित रह सकते हैं अतः उनकी नाड़ी की गति भी कम अर्थात् २२ से ४७ प्रति मिनट होती है।

इसलिये यह सिद्ध होता है कि जानवरों आयु की सीमा का थोड़ा-बहुत अन्दाज़ हम उनकी नाड़ी की चाल से आसानी से लगा सकते हैं।

जानवरों की चाल

अब से पहले लोगों को घोड़े और कुत्ते आदि दौड़ाये जाने वाले पशुओं और सन्देश-वाहक कबूतरों ही की चाल का पता था किन्तु अब अन्य जानवरों को चाल भी खोज निकाली गई है और वह प्रति घण्टा इस प्रकार है :—

चीता ६० मील; घोड़ा ४८ मील; खरगोश ४५ मील; हिरन ४० मील; ताज़ी कुत्ता ३८ मील, जिराफ़ ६५ मील; हिपोपोटेमस (अफ्रीका का भैंसा) ३५ मील; शुतुर्मुर्ग़ ३५ मील; हाथी २५ मील; गैंडा २९ मील; आदमी १८ मील।

चिड़ियों की उड़ान—

अधिकांश चिड़ियाँ प्रति घण्टे ३० से ५० मील तक उड़ती हैं। सबसे तेज़ उड़ने वाले पत्ती २०० मील प्रति घण्टे उड़ते हैं। कबूतर प्रति घन्टे ३० से लेकर ३६ मील तक, सारस २३ से २८ मील तक, गौरैया २२ से २५ मील तक, काग २४ मील और मैना ३८ से ४९ मील तक उड़ती हैं। दूर जाते समय पत्ती प्रायः ३००० फ़ीट की ऊँचाई पर उड़ते हैं। कोई-कोई पत्ती कभी-कभी ५००० फ़ीट से अधिक ऊँचाई पर भी उड़ते हैं। ४००० फ़ीट से लेकर ५००० फ़ीट तक की ऊँचाई पर उड़ते हुए भी अक्सर पत्ती देखे गये हैं। एक सारस ६१७५ फ़ीट की ऊँचाई पर उड़ता हुआ पाया गया है। चीलें ९७५० फ़ीट की ऊँचाई पर उड़ती हुई पाई

जाती है। कोई-कोई कौआ १०००० फीट की ऊँचाई पर भी उड़ता हुआ पाया जाता है।

चिड़ियों की चाल—

चिड़ियाँ अपनी तेज़ चाल के लिए प्रसिद्ध हैं और उनमें से कुछ, जैसे कबूतर अपने घर को भी नहीं भूलते। उनकी चाल इस प्रकार है :—

शाहबाज़—१८० मील प्रति घण्टा
गरुड़ या उक़ाब—११० मील „
बाज़—६५ मील „
शिकरा कौआ—४५ मील „
अबाबील—३० मील „

मछलियों की चाल के सम्बन्ध में भी काफ़ी खोज-बीन हुई है। परन्तु वे चिड़ियों से अधिक तेज़ नहीं चलतीं।

अँधेरे में रहने वाले जीव

अँधेरे में जीवन व्यतीत करने वाले जानवरों का ध्यान आते ही हमें उल्लू, चिमगादड़ और छछूँदर की याद आ जाती है। किन्तु इनके अतिरिक्त बहुत से रात को शिकार करने वाले जानवर भी हैं जो दिन के प्रकाश में निकलना पसन्द नहीं करते। परन्तु रात के अँधेरे में अपना पेट भरने के लिये शिकार की खोज में अपने घरों से बाहर निकलते हैं। यद्यपि ये जानवर अँधेरे को पसन्द करते हैं तथापि इसका यह अर्थ नहीं है कि वे हमेशा अँधेरे ही में अपना समय व्यतीत करते हैं। बहुधा वे दिन के उजाले में भी दिखलाई दे जाते हैं।

ज़मीन के नीचे गड्ढों और बिलों में रहने वाले कीड़े-मकोड़ों की संख्या बहुत बड़ी है। किन्तु ये जानवर प्रायः अन्धे होते हैं क्योंकि उनकी आँखें अधिक दिन तक प्रयोग में न आने के कारण काम नहीं दे सकतीं और न उनको अँधेरे में उनकी आवश्यकता पड़ती है किन्तु फिर भी उनमें से बहुतों की आँखें ठीक भी होती हैं। प्रकाश के अभाव के कारण ऐसे जानवरों के रंग ग़ायब हो गए हैं और वे प्रायः सफ़ेद या हल्के पीले रंग के होते हैं। इस अन्धकार में उन्हें भोजन भी कम मिलता है इसीलिये वे पर्याप्त छोटे हैं। आँखों की कमी को पूरा करने के लिये उनकी दूसरी इन्द्रियाँ काफ़ी उन्नति कर लेती हैं। यहाँ तक कि वायु की थोड़ी-सी गति से भी वे अपने शत्रुओं की उपस्थिति को पहचान लेते हैं और सतर्क हो जाते हैं।

धरती के भीतर रहने वाले बहुत से जानवर अन्धे होने पर भी प्रकाश को अनुभव कर लेते हैं। अँधेरे में प्रकाश के पहुँचते ही कीड़े-मकोड़े और पतिंगे भाग कर दराजों में छिपते हुए दिखलाई देते हैं।

वे क्या खाते हैं ? शायद फफूँद खाते हों, या मनुष्यों के बचे हुये टुकड़ों पर निर्वाह करते हों। खन्खजूरे आदि जानवर सड़ी हुई लकड़ी और फफूँद पर बसर करते हैं। बहुत से कीड़े अपने तथा दूसरे कीड़ों के बच्चों ही को अपना शिकार बना लेते हैं। इन जानवरों के मार्ग में जो छोटे जीव जाते हैं उन्हें वे चट कर जाते हैं और बलिष्ठ और बड़ी चीज़ से सामना हो जाने पर स्वयं उसका शिकार बन जाते हैं। ऐसी जगहों पर इस प्रकार एक दूसरे का पेट पलता है।

कुछ मछलियाँ भी अंधी होती हैं। इनमें से एक प्रकार की मछली की आँखें उसकी सिर की खोल के नीचे दबी होती हैं

और उनसे बिलकुल दिखाई नहीं देता। इनका रंग सफ़ेदी लिये हुये होता है। इनके सिर के दोनों ओर कुछ अंग होते हैं जो किसी वस्तु के छू जाने पर उसे बाहरी परिस्थिति की सूचना देते हैं। और उन्हीं अंगों की सहायता से यह मछली अपना मार्ग भी मालूम कर लेती है। अँधेरे में रहने वाले अन्य जीवों की तरह यह मछली भी बड़ी डरपोक होती है तनिक सी आहट से वह तुरन्त गहरे पानी में भाग जाती हैं।

'सैलैमैण्डर' भी ज़मीन के भीतर रहने वाले जानवरों में से एक है। इसका शरीर लगभग १ फुट लम्बा और साँप के समान होता है किन्तु उसके चार पैर होते हैं। वह फुर्तीला नहीं होता किन्तु पानी के अन्दर पत्थरों में छिपा रहता है। उनकी गर्दन के दोनों ओर लाल रंग के गलफड़ होते हैं। इसका सारा शरीर सफ़ेद होता है किन्तु यदि उसे प्रकाश में बाहर लाया जाता है तो उसका रंग बदलना प्रारम्भ हो जाता है और धीरे-धीरे वह बिलकुल काला हो जाता है। यह जानवर बिना किसी भोजन के वर्षों जीवित रह सकता है।

साँपों में भी बहुत से इस प्रकार के होते हैं जो रात को शिकार करने बाहर निकलते हैं और दिन भर पत्थरों और अन्य जानवरों के बिलों में छिपे रहते हैं, किन्तु उनकी गणना धरती के भीतर रहने वाली आबादी में नहीं की जा सकती क्योंकि ये बहुधा दिन को भी बाहर निकल आया करते हैं।

कुछ चिड़ियाँ भी अँधेरे में रहने वाली होती हैं। ऐसी एक चिड़िया दक्षिण अमेरिका के पहाड़ों की खोह में रहने वाली 'तितली चिड़िया' है, जो सारा दिन अँधेरे में गुज़ारती है और केवल रात के अँधेरे में भोजन की खोज के लिये बाहर निकलती है और फलों पर निर्बाह करती है। यह पेड़ों पर बैठे बग़ैर उड़ते-

चढ़ते ही अपने चोंच से पेड़ों के फल तोड़ लेती है और इसके पश्चात् बहुत ऊँचाई तक उड़ जाती है। आकार में यह कौवे के बराबर होती है और उसकी चोंच भी कौवे की तरह बड़ी होती है किन्तु इसका रंग भूरा होता है। इसके मुँह के दोनों ओर कुछ कड़े बाल होते हैं जिनके द्वारा यह अँधेरे में अपना मार्ग ढूँढ़ लेती है। वहाँ के जंगली लोग इन चिड़ियों का तेल निकालते हैं और एक लम्बे बाँस से इनको मार लेते हैं। इसी डर से ये अपने घोंसलों को ऐसी जगह पर बनाती हैं जहाँ मनुष्यों का आवागमन नहीं होता। प्रत्येक घोंसले में दो या चार अण्डे होते हैं, आरम्भ में इनका रंग सफेद होता है किन्तु थोड़े समय के पश्चात् मटीला हो जाता है।

ऐसे और भी जानवर हैं और कुछ स्तनपायी भी हैं जो अँधेरे या पत्थरों में अपना घर बना लेते हैं किन्तु भोजन ढूँढ़ने के लिए उनको भी बाहर आना पडता है।

जानवरों के रंग

छोटे से छोटे कीट, पतंगों में ध्यान से देखने पर भिन्न-भिन्न प्रकार के रंग दिखलाई पडते हैं। इनमें से कुछ के रंग बड़े चित्ताकर्षक होते हैं और कुछ अपनी विभिन्न अवस्थाओं में रंग बदलते रहते हैं। अधिकतर कीड़े-मकोड़ों के रंग अपनी इर्द-गिर्द की परिस्थिति के अनुसार ही होते हैं और प्रायः उनके रंग उसी तरह पैदा होते हैं जैसे खनिज पदार्थों में।

काला रंग—

प्रायः यह देखा गया कि गहरे रंग और बदमिज़ाजी में एक विशेष अनुपात होता है। काले तेंदुये चीतों से अधिक भयंकर होते हैं। काले रंग के जानवर प्रायः अधिक नट-खट होते हैं, जैसे काले बिच्छू और जंगली भैंसे, काले साँप, काले चूहे और काले बाहरसिंघे अपने अन्य रंग के साथियों की अपेक्षा अधिक खतरनाक होते हैं। काला रंग क्रोध का द्योतक है अतः यह न समझना चाहिये कि चमकीले रंग केवल मनमोहक और शोभा ही की वस्तु होते हैं।

जो बात गहरे और भड़कीले रंग वाले पशुओं की होती है वही दशा चमकीले और भड़कीले बाल और पर रखने वाले पक्षियों में भी पायी जाती है। वे हल्के और फीके रंग वाले अपने सजातीय पक्षियों की अपेक्षा अधिक लड़ाकू और बहादुर होते हैं। अन्य पक्षियों की अपेक्षा कौवा, कोयल और भुजंगा अधिक नटखट होते हैं। यही हाल पानी में रहने वाले काले मगरमच्छों का है।

भड़काने वाले रंग—

निरीक्षण से यह देखा गया है कि कुछ जानवर कुछ विशेष रंगों को देखकर भड़कते हैं और भयंकर हो जाते हैं। जैसे लाल रंग देखकर बैल भड़कता है और आक्रमण करने लगता है। चमकदार रंगों का काम दूसरों को धमकाना है। इसीलिये बहुत से जानवर चमकदार रंगों पर आक्रमण करते हैं जैसे लड़ते समय बुलबुलें एक दूसरे की लाल पेटी को नोचती हैं।

लाल, पीला और हरा रंग—

स्तनपायियों में जिस प्रकार काला रंग क्रोध प्रकट करता है, वही हाल लाल रंग का भी है। लाल के पश्चात् पीले रंग का नम्बर आता है। मुर्गियों में नर लाल और मादा पीली होती है। जानवरों में हरा रंग सबसे निम्नकोटि का होता है। विशेषज्ञों ने उसका निरीक्षण चिड़ियों में करके यह परिणाम निकाला है कि उनके जन्म के प्रारम्भिक काल में उनका रंग हरा होता है, इसके बाद पीला और पीले के पश्चात् लाल रंग की बारी आती है।

मनुष्य भी स्वभावतः लाल रंग को ख़तरे का चिन्ह समझते हैं, क्योंकि लाल रंग तकलीफ़ देने वाला और दिमाग़ को परेशान करने वाला होता है। हम लाल रोशनी में पढ़ना पसन्द नहीं करते, लाल आँधी देखकर घबरा जाते हैं और यह तो सबही को मालूम है कि हरा रंग आँखों को ठंढक देने वाला होता है। हरे रंग के जानवर प्रायः शान्तिप्रिय होते हैं।

रंग परिवर्तन—

बहुत से जानवर अपने प्रसंग और अपने प्रसवकाल में नए और सुन्दर रंग उत्पन्न कर लेते हैं। पक्षियों को इसकी उच्चकोटि की विशेषता प्राप्त है। उनके रंग परिवर्तन से उनके स्वभाव में भी प्रत्यक्ष अन्तर दिखलाई पड़ता है।

यह भी देखा गया है कि सुन्दर और भड़कीले रंग के पक्षी बन्धन में आने के पश्चात् अपने रंगों की सुन्दरता और चमक खो बैठते हैं। सबसे अधिक प्रभाव लाल रंग पर पड़ता है जो क्रमशः पीला होता जाता है। यह भी देखा गया है कि यदि चिड़िया अप्राकृतिक बन्धन से मुक्त हो जाती है तो पुनः अपने

खोये हुये रंग प्राप्त कर लेती हैं। डारविन ने लिखा है कि काले सिर की चिड़िया बहुधा क़ैद में अपना रंग नष्ट कर देती है। कारण यह है कि बन्धन का प्रभाव जानवर की प्रवृत्ति पर पड़ता है और बड़े से बड़ा और महान् अत्याचारी पशु भी अपनी आजादी को खोकर अपनी आवेशपूर्ण प्रवृत्ति और क्रोध के भयानक स्वप्न देखना छोड़ देता है और इसीलिये उसके रंगों की अधोगति होने लगती है और यही कारण है कि बन्धन का प्रभाव केवल चमकदार रंगों पर पड़ता है और साधारण रंग वैसे ही बने रहते हैं। एक बात और स्मरण रखने की है कि घरेलू जानवरों का रंग उनकी जंगली अवस्था से बिलकुल भिन्न होता है क्योंकि उनको मनुष्य के आश्रय में रहने के कारण आत्मरक्षा के रंगों की आवश्यकता ही नहीं रहती और यदि इन्हीं जानवरों का सम्बन्ध मनुष्यों से विच्छेद कर दिया जाय, तो वे फिर अपने असली रंग पर आ जायँगे।

जानवर जब बीमार पड़ते हैं तो उनके रंग की चमक-दमक में न्यूनता आ जाती है। इसका कारण यह है कि जानवर के रंग और उसके ज़ोश-ख़रोश में चोली-दामन का साथ है। यही कारण है कि काले रंग के जानवर अन्य रंग के जानवरों की अपेक्षा बीमारी का प्रभाव कम स्वीकार करते हैं क्योंकि काला रंग जानवर के जोश और मजबूती का एक प्रत्यक्ष चिन्ह है। इसी बात का प्रमाण हमें कभी-कभी उन जानवरों के मर जाने पर भी मिलता है जिनके रंग की चमक-दमक उनके मरने के कुछ घण्टों के पश्चात् ही प्रत्यक्ष रूप से परिवर्तित हो जाती है।

जानवरों का स्वभाव और आने वाली बातों को जानने की शक्ति

जानवरों के स्वभाव में प्रेम को भी एक स्थान प्राप्त है। उनमें केवल पति-पत्नी प्रेम, वात्सल्य प्रेम और अपने पालक के प्रति प्रेम ही नहीं होता बल्कि उनमें अपने साथियों से भी प्रेम होता है। वे साथी चाहे उन्हीं की जाति के हों या किसी अन्य वंश के, जैसे मेंमने और नर बतख का तथा बिल्ली और डोम कौवे का। जानवरों की मित्रता के बहुत से उदाहरण मिलते हैं। एक अंग्रेजी मासिक पत्र में मैंने पढ़ा था कि एक कुटुम्ब में दो जानवर पले हुए थे—एक था मेमना और दूसरा था नर बतख। दोनों परस्पर अभिन्न मित्र थे। वे कभी भी एक दूसरे से जुदा नहीं होना चाहते थे। नर बतख अपने मालिक से भी खूब हिला था और उसके साथ गाँव के डाकघर तक घूमने जाया करता था। जब उसका स्वामी डाकखाने के भीतर जाता था, तब वह बाहर खड़ा उसकी बाट जोहा करता था और उसके लौट कर आने पर फिर उसके साथ चल देता था।

पशु-मित्रों का दूसरा उदाहरण एक बिल्ली और डोम कौवा का है। किन्तु इस दोस्ती में कभी-कभी खलल आ जाता था क्योंकि डोम कौवा अपनी शरारती आदत के अनुसार बिल्ली की पूँछ मड़ोर कर झटक दिया करता था जब वह सोने की इच्छुक होती थी।

इनमें शत्रुत्व का भाव भी बहुधा देखा जाता है जब ये एक दूसरे के शत्रु हो जाते हैं तो एक दूसरे को जान से मार डालने पर उतारू हो जाते हैं। मेरे पड़ोस में बुद्धू ग्वाला के एक भैंसे और एक विलायती साँड़ में ऐसी शत्रुता हो गई थी कि दोनों

का एक साथ चरने छोड़ना असम्भव था। जब गायों भैंसों के गल्ले के साथ एक को छोड़ा जाता था, तो दूसरा बँधा रहता था। साथ छोड़ने पर दोनों लहू-लुहान हो जाते थे, और अन्त को भैंसे ने एक दिन विलायती साँड़ को ऐसा जख्मी कर ही दिया कि वह दो-चार दिन बाद मर गया।

कुछ जानवरों में दूसरों को छेड़ने की आदत, कुछ में चोरी करने का स्वभाव, कुछ में स्वामिभक्ति, कुछ में चतुरता बहुधा देखने को मिलती है। इन्हीं वृत्तियों का आभास थोड़ा-बहुत पक्षियों में भी पाया जाता है। देखने वालों को इनके प्रत्यक्ष प्रमाण बन्दरों, कुत्तों, भेड़ियों, हाथियों और कोयल आदि पक्षियों में मिल सकते हैं।

कुछ जानवर आने वाली बातों को पहले ही से जान लेते हैं इनमें में चूहे सब से चतुर होते हैं। न मालूम उन्हें आने वाली मुसीबत का ज्ञान पहले ही से कैसे हो जाता है, जिसके कारण वे आने वाले कष्ट के स्थान को छोड़ कर पहिले ही से भाग जाते हैं। नदी में बाढ़ आने का ज्ञान कुछ मछलियों को भी पहिले ही से हो जाता है।

यह बात तो निर्विवाद सिद्ध है कि बहुत से जानवरों की श्रवण-शक्ति मनुष्य की श्रवण-शक्ति से उत्तम होती है। अतः वे बहुत सी ऐसी आवाजें सुन सकते हैं जिनका सुनना मानव-शक्ति से परे है। अतएव यह एक कारण हो सकता है जिससे जानवर ऐसी अनेक बातें मालूम कर लेते हैं जिनकी मनुष्य को कोई खबर नहीं होती। जानवरों की भावी बातें जान लेने की वृत्ति का एक कारण यह भी हो सकता है कि उन्हें ऋतु की दशा समझने का पर्याप्त ज्ञान होता है, जिससे वे ऐसे परिणाम निकाल लेते हैं जो मनुष्य की शक्ति से बाहर होते हैं। यह बहुधा

देखा गया है कि लोग कुछ पक्षियों के आगमन, साधारण गौरैयों के मिट्टी में लोटने और चींटियों के अण्डों के स्थानान्तरित होने को देखकर आने वाले ऋतु-परिवर्तन के सम्बन्ध में भविष्यवाणी करते हैं और वह प्रायः ठीक ही निकलती है। इन बातों के जानने के लिये मनुष्य को जीव-जन्तु निरीक्षक और प्रवृत्ति विशेषज्ञ होने की आवश्यकता होती है। जिन बातों को पशु-पक्षी अपनी स्वयम्भू प्रवृत्ति से जानते हैं, उनको हम भी कुछ सीमा तक प्रकृति निरीक्षण से जान सकते हैं।

पक्षियों का वैज्ञानिक विश्लेषण

१—पक्षी उड़ते समय वायु को नीचे दबाते हैं। यदि वे उड़ने में पंख न फड़फड़ायें, तो उड़ नहीं सकते। उनके पंखों की फड़फड़ाहट में इतना वेग होता है कि वे कभी-कभी प्रति मिनट दो सौ बार उठते-गिरते हैं। अवरोधक शक्ति की इस क्रिया-प्रतिक्रिया से ही पक्षी क्रमशः ऊपर उठते हुये वायु में उड़ने लगते। डैनों के फड़फड़ाने में उनके बाज़ू की माँस-पेशियाँ अधिक सहायक होती है, यही कारण है कि उड़ने वाले प्राणियों की माँस-पेशियाँ सुदृढ़ और पूर्ण विकसित होती हैं।

२—पक्षियों की अधिकांश हड्डियों का सीधा सम्बन्ध माँस की प्रणाली से होता है। अतः उनके अस्थिवातायन से बराबर हवा गुजरती रहती है।

अधिकांश पक्षियों के ऊपरी बाज़ू की हड्डियाँ वायु से प्रेरित होती हैं और उनकी साँस लेने की क्रिया बड़ी अद्भुत और विस्मयोत्पादक होती है।

३—पक्षियों के शरीर के कुछ अंश मेंढकों से मिलते-जुलते हैं। अधिकांश भागों की रचना अत्यधिक पेचीली और विचित्र होती हैं। पक्षियों की रीढ़कास्थि-संगम-रेखा बहुत लम्बी होती देखी गई है। यह रीढ़कास्थ-संगम-रेखा आगे चलकर पूँछ की हड्डी से जा मिलती है। पक्षियों के पूँछ के मजबूत होने का यही कारण है। विहंगों की छाती की हड्डी मेंढक की अपेक्षा बड़ी होती है। इन पखेरुओं के वक्षस्थल पर एक ऊँची हँसुली होती हैं, जिसमें बड़ी-बड़ी नसें जुड़ी रहती हैं, और यही उड़ने में सहायक होती हैं। जो पक्षी उड़ाकू नहीं होते उनकी हँसली छोटी होती है, और कहीं-कहीं तो उसका सर्वथा अभाव रहता है। अफ्रीका का शुतुर्मुर्ग इसी कोटि के पक्षियों में होता है।

पक्षियों के सीने की हड्डी उन पाँच जोड़ी पसलियों से जुड़ी होती है जो अन्यान्य पसलियों से मिलकर मेरुदण्ड में चिपटी रहती है। इसके अतिरिक्त कुछ और भी पसलियाँ होती हैं जिनका सम्बन्ध रीढ़कास्थि-संगम-रेखा से रहता है। सीने की हड्डी से उनका कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं देखा जाता। कंधे की हड्डियाँ लम्बी और संकीर्ण होती हैं। उनके पेड़ू की हड्डियों की बनावट भी बड़ी जटिल होती है।

४—पक्षियों के पंजों की रचना में कुछ उँगलियाँ आगे कुछ पीछे और कुछ अगल-बगल के इर्द-गिर्द चक्राकार होती हैं। पंजों की पीछे की हड्डियों की रचना भी बड़ी जटिल होती है।

५—जलचर पक्षियों में बतख, पनडुब्बी, थलचरों में शुतुर्मुर्ग मुख्य हैं। तीसरे प्रकार के पक्षी साधारण नभचर कहे जाते हैं।

जमीन पर चलने वाले पक्षी अँगूठे तक परों से ढके रहते हैं, वृक्ष पर चढ़ने वालों की अँगुलियाँ लम्बी होती है—दो आगे

और दो पीछे की ओर। पाश्चात्य देशों की कोयल और भारत का कठफोड़वा इसी श्रेणी की चिड़ियाँ हैं। अतः भिन्न-भिन्न पक्षियों के आकार-प्रकार, रहन-सहन, चाल-ढाल और बनावट में जमीन-आसमान का अन्तर होता है।

६—पक्षियों के सिर की खोपड़ी मजबूत होती है और घनी-अस्थि-जालियों पर अवलम्बित रहती है। सिर और गर्दन अँगूठी के आकार की हड्डियों पर मिलते हैं। चेहरे की हड्डियाँ ही आगे बढ़कर चोंच बन जाती हैं। इनके किनारे आरे की तरह तेज होते हैं। किसी की चोंच वक्र और नुकीली, और किसी की सीधी और भोंथरी होती है, क्योंकि जिसे जैसी आवश्यकता हुई उसे वैसी ही चोंच प्रकृति ने दी। बतख और तोते की चंचु-विभिन्नता का यही कारण है।

७—पक्षियों की पाचन-प्रणाली मेंढक अथवा पशुओं की पाचन प्रणाली से भिन्न होती है। प्रत्येक प्राणी की पाचन-क्रिया में लार का बहुत बड़ा अंग विद्यमान रहता है। इसी के योगदान से जठरानल भोजन को हजम करता है। किन्तु पक्षियों की पाचन-शक्ति का इस लार से कोई सम्बन्ध नहीं होता। उनके मुँह से लगातार उदर तक एक लम्बी नली होती है जिसका प्रारम्भिक अंश संकीर्ण रहता है; पर जैसे-जैसे वह नली आगे बढ़ती है, फैलती जाती है और अन्त में जाकर वह एक पोट का रूप पकड़ लेती है। उनका किया हुआ भोजन उसी नली के द्वारा पोट के गुहागह्वर में जा पड़ता है, जिसमें कठोर से कठोर वस्तुओं को भी मोम सा मुलायम बना देने का एक नैसर्गिक यंत्र है। जब खाद्यपदार्थ में काफी मृदुलता आ जाती है तब वह एक संकीर्ण और छोटी थैली में उतरता है, जहाँ पाचन-रस तैयार होकर भोजन में मिलता जाता है। इस छोटी थैली को पार करके रस-युक्त भोजन द्वितीय उदराशय में प्रवेश करता है। वहाँ यांत्रिक क्रिया-प्रति-

क्रियाओं के द्वारा वह सूक्ष्म से सूक्ष्मतम परमाणुओं में परिणत होता है। द्वितीय उदर की माँस-पेशियाँ अत्यन्त शक्तिशालिनी होती हैं, और वज्र-तुल्य कंकड़-पत्थरों को भी बात की बात में पीस डालती है। संसार के अन्यान्य प्राणियों के दाँत और उदर जो कार्य करते हैं, वही कार्य पक्षियों की संकीर्ण थैली और द्वितीय उदर के द्वारा सम्पन्न होता है। संकीर्ण थैली का कार्य रसायननिक है और द्वितीय उदर का यांत्रिक। इस प्रकार नवनिर्मित पदार्थ एक टेढ़ी-मेढ़ी नली से आँत में प्रवेश करता है। जहाँ वह अधिक नीरस हो जाता है।

८—पखेरुओं की नरेटी की रचना भी बड़ी विचित्र होती है। वे साँस की क्रिया फेफड़ों से करते हैं जिसका सम्बन्ध शरीर के आन्तरिक वायुकोष से रहता है। इसके अतिरिक्त उनकी अस्थि-कमाचियों का झिरझिरापन भी वायु की गतिशीलता में सहायक होता है।

पक्षियों का तंतु-संस्थापन पशुओं-सा रहता है। एक से विशुद्ध शोणित संचालित होता है और दूसरे से दूषित। अन्यान्य प्राणियों की अपेक्षा पक्षियों के रक्त में अधिक उष्णता है, अबाबील का रक्त-ताप ११२ अंश फार्नेहाइट रहता है।

९—क़द की दृष्टि से इनकी आँखें बड़ी हैं और उनकी रक्षा गतिशील पपोटों से होती है। पपोटों के ऊपर पारदर्शी झिल्लियों का पर्दा रहता है। आँख की पुतलियों की बनावट भी ऐसी होती है कि वे दूर तक देख सकें।

१०—पक्षियों की श्रवण-शक्ति शब्दों को शीघ्र ग्रहण कर लेती है, यद्यपि उनके कान उनकी आँखों के कुछ नीचे और पीछे की ओर पंखों में बन्द रहते हैं। उनकी स्पर्श, स्वाद और घ्राण

शक्ति विकसित नहीं होती; और भिन्न-भिन्न पक्षियों में ये शक्तियाँ समाधिक मात्रा में पाई जाती हैं।

११—ऋतु परिवर्तन के अनुसार पक्षियों के शरीर का रंग भी परिवर्तित होता रहता है। वर्ष में प्रत्येक पक्षी कम से कम एक बार और कोई-कोई एकाधिक बार अपना पुरातन परिधान बदल कर रंगीन नये चोले में निखर उठते हैं। अबाबील वर्ष में एक बार और 'टारमिजन' तीन बार नये पंखों का परिधान पहनते हैं। शरद ऋतु के आरम्भ में प्रायः सभी पक्षी अपना कायापलट कर देते हैं, और कुछ बसन्त ऋतु में भी यह क्रिया करते हैं।

शरदऋतु में उत्तर देशों के रहने वाले पक्षी, सर्दी की अधिकता से उत्पन्न होने वाले खाद्य-पदार्थों के अभाव के कारण भोजन की खोज में दक्षिण की ओर लौटते हैं और हिमालय के अंचल को लाँघ कर बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना करते हुये हिन्दुस्तान में पहुँचते हैं। इस यात्रा में वे घन्टे में बीस से लेकर साठ कोस तक उड़ते हैं। इनकी यात्रायें प्रायः रात में हुआ करती हैं। ये तिब्बत की ओर से या तो पहाड़ की घाटियों से आते हैं या ब्रह्मपुत्र के रास्ते से। इन नवागन्तुक अतिथियों में 'थिरथिरा' और 'तेलिया मैना' हमारे चिरपरिचित हैं। और बहुत से पक्षी जैसे धोबिन, पीलक आदि, जो भारत की गर्मी को बर्दाश्त नहीं कर सकते, इन दिनों उत्तर की दिशा में प्रयाण कर देते हैं और पहाड़ी प्रदेशों में ही गर्मी का मौसम बिताते हैं।

साँप और उसके शत्रु

साँप का नाम ही डरावना मालूम देता है। साँप चाहे विषैला हो और चाहे विषहीन, किन्तु उसके देखने ही से भय उत्पन्न होता है। दुमुही यद्यपि तनिक भी हानिकर नहीं होती फिर भी लोग उससे डरते हैं। अतः यह बात स्मरण रखने की है कि प्रत्येक साँप ज़हरीला नहीं होता और ज़हरीला साँप भी उसी समय अपने ज़हर का प्रयोग करता है जब उसे अपनी जान का भय होता है।

केवल मनुष्य ही साँपों का शत्रु नहीं होता बल्कि बहुत से भिन्न-भिन्न प्रकार के जानवर साँप को मारने और खाने के लिये तैयार रहते हैं, और उनमें से कुछ का भोजन ही साँप होते हैं। साँप के सबसे बड़े शत्रु स्वयं साँप ही होते हैं। परन्तु सब साँप दूसरे साँपों को नहीं खाते। केवल कुछ ख़ास साँप ऐसे होते हैं जो दूसरे साँपों को खाते हैं। इनमें कोबरा सबसे बड़ा और सब से अधिक भयंकर होता है। कोई-कोई कोबरा चार गज़ से भी अधिक लम्बा होता है और उसका मुख्य भोजन साँप ही होते हैं। साँपों का दूसरा शत्रु कौड़ियाला है, जिसके काटने से हिन्दुस्तान में सबसे अधिक मृत्युएँ होती हैं। इसका भोजन चूहे और अन्य प्रकार के साँप होते हैं। यह घरों में घुसने का बड़ा प्रेमी होता है। नदी और ताल के पानी में रहने वाले साँप प्रायः ज़हरीले नहीं होते किन्तु समुद्र में रहने वाले साँप बड़े ज़हरीले होते हैं।

साँप को मारने वाले अन्य जानवरों में नेवला मुख्य है। वह साँप से लड़ता है और बड़ी होशियारी से उसकी चोटें बचाता है। और अन्त में उसका सिर पकड़ कर उसे परास्त करके खा जाता है।

साँप के अन्य शत्रुओं में 'साही', 'ग्लास स्नेक' तथा 'आरमिडल' नामक जानवर हैं। ग्लास स्नेक कोई साँप नहीं होता, बल्कि छिपकली वंश का साँप के समान, एक कीड़ा होता है। यह 'वाइपर' सरीखे विषैले साँप को भी निर्भय होकर खा जाता है। आरमिडिल दक्षिण अमेरिका का साही के समान, एक कवचधारी जानवर है। छिपकली जाति के कई अन्य जानवर भी साँप को खा जाते हैं जैसे "आँख छिपकली"। दक्षिण अमेरिका का "तेजो" भी साँप खाता है। यह मुर्गी के अण्डों और बच्चों को भी खा जाता है।

कुछ चिड़ियाँ भी साँप को खाती हैं। इनमें दक्षिण अफ्रीका की "सेक्रेटरी चिड़िया" एक है। यह साँप को अपने पैरों से कुचल कर उसकी हड्डियाँ अलग-अलग कर देती है और फिर उसे पूँछ की ओर से खाना आरम्भ करती देती है तथा अन्त में उसके सिर के टुकड़े-टुकड़े करके खा जाती है। गरुड़ या उक़ाब भी साँप को खा लेता है। हमारे यहाँ के मोर और अमेरिका की चील्हें भी साँप को खाते हैं। घड़ियाल और नाके भी साँप को मारने में प्रसिद्ध हैं।

जिस प्रकार पानी के रहने वाले साँप विषैले नहीं होते वैसे ही घास में रहने वाले साँप भी जहरीले नहीं होते। साँपों के पकड़ने में कोई जादू नहीं होता, केवल हाथ की सफ़ाई होती है। साँप सदा हिलती हुई वस्तु पर आक्रमण करता है। अगर कोई उसके सामने चुपचाप खड़ा रहे तो वह कदापि हमला न करेगा। सँपेरे लोग उसे होशियारी से पकड़ कर उसके जहरीले दाँत उखाड़ डालते हैं और फिर उसका तमाशा दिखाते हैं।

———— ——

जानवरों का गर्भकाल

काँगारू यद्यपि बहुत बड़ा जानवर है किन्तु उसका बच्चा जन्म के समय एक छोटे चूहे से बड़ा नहीं होता। पैदा होने के कुछ दिन बाद भी वह इस योग्य नहीं होता कि अपनी माँ से अलग रह सके। उसकी माँ के पेट में एक थैली होती है जिसमें वह एक अर्से तक सुरक्षित रूप से पलता रहता है।

चूहे का बच्चा २१ दिन पेट में रहता है।

खरगोश का बच्चा २० दिन पेट में रहता है।

भेड़ और बकरी के बच्चे का गर्भकाल २१ सप्ताह, गाय के बच्चे का ९ मास, सुअर का १६ सप्ताह, घोड़े का ११ मास, हाथी का २० मास, ऊँट का ४९ सप्ताह, ह्वेल का १० मास, बिल्ली का ५६ दिन, शेर का १५ सप्ताह, चीते का २२ सप्ताह, रीछ का ७ मास, दरयाई घोड़े का १ साल, बन्दर का ७ मास, और आदमी का २८० दिन होता है।

जिन जानवरों के बच्चे जितने अधिक काल तक माँ के पेट में पलते हैं उतनी ही अच्छी दशा में वे पैदा होते हैं, जैसे हाथी और चूहे के बच्चे गर्भकाल में अधिक दिन रहने वाले बच्चे, अधिक समय तक माँ पर आश्रित नहीं रहते। वे बिना माँ के भी जीवित रह सकते हैं।

जानवरों की पूँछें और उनका प्रयोग

विभिन्न प्रकार के पशुओं की पूँछ सम्बन्धी क्रियाओं का अध्ययन अत्यन्त रोचक होगा। इससे यह भी मालूम हो सकता है कि पशुओं की पूँछें भिन्न-भिन्न प्रकार की क्यों होती हैं।

पशुओं की पूँछें भिन्न होने का कारण यह कि प्रत्येक पशु अपनी पूँछ का प्रयोग भिन्न प्रकार से करता है। गायें अपनी पूँछ को पीठ पर इधर-उधर हिलाया करती हैं। इसके द्वारा वे मक्खियों को उड़ा देती है। मक्खियों को उड़ाने के लिए गायों पास पूँछ ही एक अस्त्र है जो कि उनके सारे शरीर में पहुँच सकता है।

बन्दर अपनी पूँछ का प्रयोग अन्य प्रकार से करता है। वे लोग प्रायः अपनी पूँछ को वृक्ष की शाखा में लपेट लेते हैं और अपने शरीर को स्वतन्त्रतापूर्वक लटका देते हैं।

कँगारू अपनी पूँछ का प्रयोग बड़ी विचित्र तरह से करता है। उसकी पूँछ बड़ी लम्बी और मजबूत होती है। वह बैठने के समय इसका उपयोग तिपाई के एक पैर की भाँति करता है, इससे बैठने के समय उसको बहुत आराम मिलता है।

गिलहरियों के पूँछ का उपयोग भी विचित्र है। वह एक शाखा से दूसरी शाखा पर दौड़ने में गिलहरी की बड़ी सहायता करती है क्योंकि पूँछ के कारण उसके शरीर का वजन प्रत्येक अवस्था में समान रहता है।

प्राणी-राज्य के प्रेत-कर्म करने वाले

एक समय आता है जब लम्बे से लम्बा जीवन व्यतीत करने वाला जानवर अपने साधनों को व्यय कर डालता है।

(४) दक्षिणी-ध्रुव प्रदेश में पेंग्विन पक्षियों में यदि कोई अनाथ बच्चा हो, तो दूसरे पेंग्विन उसे पालने के लिये आपस में झगड़ पड़ते हैं और अनाथ अण्डे कई बार दो-चार पक्षियों की ममता भरी लड़ाई में फूट जाते हैं।

(५) आस्ट्रेलिया की झाड़ी में रहनेवाले मुर्गों में अपने घर की की सफ़ाई का ख्याल अत्यधिक देखने में आया है। कभी-कभी ये 'बुशटर्की' ५० टन कूड़ा अकेले साफ़ कर देते हैं। कहीं इन मुर्गों ने इकट्ठे घर बनाया, तो आदमी के बराबर ऊँची और ५० गज़ लम्बी एक गुफा सी वे बना लेते हैं, जिसमें गिरगिट भी अपने अण्डे रख देता है। और सूरज की धूप में जब इस मुर्गी के और गिरगिट के अण्डे एक साथ सिकते हैं, तो चूँकि गिरगिट कई बार जल्दी जीवन ग्रहण कर लेते हैं अतएव इस मुर्गी के अण्डों से उन्हें परसा हुआ आहार मिल जाता है।

(६) सुवर्ण-गरुण में एक खूबी देखने में आई है कि वह किसी पहाड़ की ऊँची चोटी पर बने घोंसले के पास ही खाने की वस्तु गिरा देता है, जिससे बच्चे उस खाद्य के लालच में स्वावलम्बी होकर अपने घोंसले से उड़ने की कोशिश करते हैं।

(७) बाघ वगैरह पशुओं की भी आदत होती है कि वे अधमरा-सा एक शिकार जंगल से घसीट कर अपनी गुफा तक ले आयेंगे, जिससे उनके पुत्र-पुत्री स्वच्छन्द शिकार का अभ्यास कर सकें। बिल्ली को अपने बच्चों के लिये चूहा लाते तो हम सब ने देखा होगा।

(८) भेड़िये और हिरन आदि हमेशा जत्था बनाकर रहते हैं और उन्हें अपने नेता पर पूर्ण विश्वास रहता है।

(९) कोडियाक द्वीप के भालू के प्रति बार जुड़वा बच्चे होते हैं और कोई भी बच्चा चूहे से बड़ा नहीं होता।

शब्द-कोष

Amoeba—एक-कोषीय या एक 'सेल' वाला कीटाणु।

Anemone—समुद्री वायु-पुष्प, समुद्री फूल।

Ant-eater—चींटी-भक्षी।

Akimbo—जिस प्रकार कमर पर हाथ रखने से कोहनियाँ बाहर की ओर हो जाती हैं।

Acid secretion—अम्ल-रस, तेज़ाब।

Archer—तीरन्दाज़।

Angler—लुभाने वाली मछली।

Anaconda—एक प्रकार का साँप।

Aphid—पौधा-जूँ।

Amphibian—उभचर, स्थल-जलचर।

Abnormal—समाधिक।

Birturong—हिमालय की रीछ बिल्ली।

Bacilli—कृमि।

Blenny—खारदार पर वाली मछली।

Bluff—छल।

Boa-conistractor—सिकुड़ने वाला साँप।

Bootlace—जूते के फ़ीते की तरह का कृमि।

Boa—अजगर।

Beetle—गुबरीला।

Cones—कोकला।

Counerpart—जोड़े की वस्तु ।

Chrysalis—विरोधी कोषस्थ अवस्थाएँ ।

Crazy quilt—ऊल-जलूल रजाई ।

Crab—केकड़ा ।

Cricket—झींगुर ।

Crawfish—केकड़े की आकृति की मछली ।

Crustacean—छिलके या खोलदार मछलियाँ ।

Cerebrum—मस्तिष्क का अग्र भाग ।

Cerebellum—मस्तिष्क का पृष्ठ भाग ।

Caterpillar—भिनगा, तितली का पहल रूप ।

Cochineal—कृमिदाना ।

Cuttlefish—दो-शाखा मछली ।

Catfish—बिल्ली मछली ।

Clam—घोंघा ।

Culture—कृत्रिम उत्पत्ति ।

Corp—मीठे पानी की मछली ।

Cell—कोषाणु, कोष, रंध्र ।

Carbon—अंगारका वायु ।

Diaphram—महा-प्राचीर-परदा ।

Drum—कर्णोदय ।

Dinasaur—एक वृहताकार रेंगने वाला जानवर ।

Dormouse—गिलहरी के समान एक छोटा जानवर ।

Eagle—गरुड़ ।

Eel—जल-व्याल ।

Egret—बगुला ।

Earthworm—केंचुआ ।

Fangs—पोले नोकदार और जहरीले दाँत ।

Flea—पिस्सू ।

Focus—केन्द्र-बिन्दु ।

Food—भक्ष्य ।

Fins—पंख, सुफने ।

Ferret—बिल्ली ।

Firefly—जुगनू ।

Feelers—स्पर्शक ।

Ferrets—नेवले की जात वाले जीव ।

Fungus—कुकुरमुत्ता ।

Gynander—प्रकृति के अजूबे जिनमें योनि की पिचीकारी होती है ।

Germ—कीट ।

Grub—कोआ, घुन ।

Goose—बतख ।

Gulls—मुर्गाबी ।

Gecko—घरेलू छिपकली ।

Glow-worm—जुगनू ।

Grey mullet—कोसल मछली ।

Gander—नर बतख ।

Humming—गुनगुनाहट या भन-भनाहट पैदा करने वाली।

Hippopotamus—दरियाई गैंडा।

Hedgehog—जंगली चूहा।

Hawk—बाज़।

Hermaphrode—वह प्राणी जिसमें स्त्री और पुरुष दोनों के लक्षण हों, द्विलिंग, उभयलिंग।

Herbivorous—शाकाहारी।

Hydrogen—उदजन।

Inguana—छिपकलियाँ।

Insectivorous—कीटाहारी।

Jellyfish—झींगा मछली।

Jackass—तूती परिवार का एक पक्षी।

Jackdaw—डोम कौआ।

Kingfisher—रामचिरैया जाति का एक पक्षी, किलकिला

Lens—तालें।

Lobster—झींगा मछली।

Lime stone—मुलायम पत्थर।

Lumpfish—भद्दी खारदार मछली।

Lemur—एक प्रकार का बन्दर।

Larva—कीट-डिम्ब।

Mambas—अफ्रीका का जहरी साँप।

Mosaic—पिच्चीकारी, जरबक्ती।

Mite—घुन।

Mollusc—घोंघा या सिप्पी।

Marmot—मैदानी गिलहरी।

Mussel—घोंघा।

Matter—द्रव्य, तत्व, जड़ वस्तु।

Maggots—कीड़े।

Marmoset—एक प्रकार का बन्दर।

Mammals—स्तनपायी।

Newt—गोह।

Naturalist—प्रकृति-प्रेमी।

Numb-fish—सुन्न मछली।

Nerves—संज्ञावाहिनी, स्नायु।

Oxygen—प्राणवायु, ओषजन।

Osiphone—सुनने की मशीन।

Octopus—अष्ट-पद।

Oyster—कस्तूरा मछली।

Puff—अफ्रीका का जहरी साँप।

Permanganate of Potash—लाल दवा।

Perch—चढ़ने वाली मछली।

Plover-like—बुलबुल की तरह की।

Parasite—परोपजीवी, परजीवी।

Plastic surgery—आकार देने वाली जर्राही।

Pipe-fish—नली वाली मछली।

Placenta—नाभिनाल, कमल ।

Prawn—झींगा ।

Potentially—उपपन्न रूप से ।

Puberty—यौवनकाल ।

Palol—एक कृमि ।

Python—एक प्रकार का साँप ।

Pupa—इल्ली, मूक कीटावस्था ।

Quiver—कँपकँपी ।

Rotifer—पहिया-प्राणी ।

Rat-tailed maggot—मूषक-पुच्छ कीट ।

Reptiles—सरीसृप ।

Raven—डोम कौआ ।

Rodent—दंशक ।

Sting-rays—एक प्रकार की मछली जिसका काँटा जहरीला होता है ।

Snail—घोंघा ।

Stereoscopic—दूरबीन का-सा ।

Shrimp—समुद्री केकड़ा ।

Starfish—सितारा मछली ।

Stickleback—वह छोटी-सी मछली जिसकी पीठ की हड्डी काँटेदार और बड़ी तेज़ होती है ।

Squid—वह मछली जो चारे के बजाय इस्तेमाल की जाती है ।

Shell--सिप्पी ।

Spring—वसन्त ऋतु ।

Sea-urchin—समुद्री-साही ।

Siphonepipe—टेढ़ी नली ।

Swallow--अबाबील ।

Sentiment--भावना ।

Sea-cucumber--समुद्री ककड़ी ।

Scallop—सदफी मछली ।

Slipper Limpet—एक छोटा-सा घोंघा ।

Spermwhale—तैलीय ह्वेल मछली ।

Spur—झुका हुआ काँटा ।

Sulphur whale—गन्धक ह्वेल मछली ।

Spindles—टेकुए ।

Toad—मेंढक ।

Trigger-fish—एक प्रकार की मछली जिसके काँटे में जहर होता है ।

Tub—कठौता ।

Tuatera--एक प्रकार की छिपकली ।

Tusks—हाथी के नुकीले बाहरी दाँत ।

Ticks—किलनियाँ ।

Turtle—समुद्री कछुआ ।

Tapeworm—फीते की शक्ल का कृमि।

Terriers--शिकारी कुत्ते ।

Vertical—खड़े बल ।

Vibration—स्पन्दन ।

Vertebrate—मेरुदण्डी ।

Wart—अधिमाँस, मस्सा ।

Whelk—सदफ़ी घोंघा ।

Winkle—झींगा ।

Weever—नश्तरी मछली ।

Walrus—दरियाई घोड़ा ।

Worms—कृमि ।